

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180290

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रकाशकः—

परिणत शिवशङ्कर मिश्र

प्रोप्राइटर—

सरस्वती सदन

७३ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

पुस्तक मिलनेका पता—

पाठक एण्ड कम्पनी,

७३ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

मुद्रक—

चन्द्रशेखर पाठक

“महाराष्ट्र प्रेस”

७३ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

वक्तव्य

सम्प्रति भारतवासियोंका दाम्पत्य-जीवन बड़ा ही दुःखमय और खलित हो रहा है। लोगोंने अपना आश्रम-धर्म भुला दिया। स्त्रियां विलासकी सामग्री और वीर्यपात एक प्रकारका सुलभ नन्द समझा जाने लगा है। सर्वत्र बाल-विवाहकी प्रथा प्रचलित। विवाह होनेपर छोटी अवस्थासे ही नवदम्पति सहवास करने लगे हैं। इसके फलस्वरूप स्वल्पकालमें ही अनेक सन्तानोंसे उनका घर भर जाता है। विवाह किस अवस्थामें करना चाहिये, सहवास किस समय करना चाहिये, अच्छी सन्तान किस प्रकार उत्पन्न करनी चाहिये—इन सब बातोंका ज्ञान न होनेके कारण जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी चिररोगिनी, अल्पायु, निस्तेज, दीनहीन और अकर्मण्य होती है। ऐसी परिस्थितिमें माता पिताका यौवन और स्वास्थ्य नष्ट होने तथा देशकी दरिद्रता बढ़नेके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। प्रस्तुत पुस्तकमें इन्हीं सब बातोंपर विचार किया गया है और दाम्पत्य-जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है, यह बतलानेकी चेष्टा की गयी है। हिन्दी-साहित्यमें यद्यपि कुछ पुस्तकें निकली हैं, तथापि एक प्रकारसे इस विषयकी पुस्तकोंका अभाव है। उसी अभावकी यत्किञ्चित् पूर्ति करनेके लिये हमने दाम्पत्य-ग्रन्थावली प्रकाशित करना स्थिर किया है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका प्रथम पुष्प है।

कुछ लोग इस विषयको अश्लील समझते हैं, परन्तु हमें वैसा माननेका कोई कारण नहीं दिखलाई देता। हमने यथासाध्य इसे शिष्ट भाषामें लिखनेकी चेष्टा की है, ताकि आबाल-वृद्ध-वनिता इसके पठनसे लाभ उठा सकें। यदि एक भी भारतवासीका दाम्पत्य-जीवन इसके ज्ञानसे सुधर सका, तो हम अपने परिश्रमको सफल हुआ समझेंगे।

प्रथम संस्करण

सन् १९१४

}

लेखक।

प्राक्कथन

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्ता भार्या तथैव च ।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

विवाहित स्त्री पुरुषोंमें परस्पर जो प्रेम पाया जाता है उसे दाम्पत्य-प्रेम कहते हैं । संसारमें जितने प्रकारके प्रेम हैं, उनमें दाम्पत्य-प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है । भाई और बहिन, माता और पुत्र, स्वामी और सेवक किंवा अन्यान्य लोगोंमें जो प्रेम दिखाई देता है, उससे यह सर्वथा भिन्न होता है । भाई किंवा बहिनके प्रेममें ममता, माताके प्रेममें वात्सल्य और सेवकके प्रेममें केवल सेवा-भाव, इस प्रकार एक ही एक भावकी प्रधानता रहती है, किन्तु दाम्पत्य प्रेम ममता, वात्सल्य, सेवा-भाव आदि सभी भाव एकत्र पाए जाते हैं । इसी लिये दाम्पत्य-प्रेम सब प्रेमोंमें श्रेष्ठ क गया है ।

दाम्पत्य-प्रेम बड़ा ही पवित्र है । शान्ति-दाता है इसकी महिमा अपरम्पार है । इसीसे संसारकी प्रतिष्ठा होती है, इसीसे गृहस्थी नन्दनकानन बनती है और इसी

प्राक्कथन ।

ते विभिन्न हृदय अभिन्नताको प्राप्त करते हैं। संसारकी वैषम्य वेदनाओं, मर्मान्तिक चिन्ताओं और हृदयभेदी नेराशाओंसे व्यथित, चिन्तित और निराश मानव मन (सका आश्रय पाकर समस्त यन्त्रणाओंको भूल जाता है, समस्त वाधा और बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। इसका प्राधार मिल जानेपर लोग अन्यान्य कष्टोंकी परवाह न कर अपना जीवन हँसी खुशीमें बिता देते हैं। इसी लिये दाम्पत्य-प्रेम दाम्पत्य-प्रेम महिमामय है; इसी लिये दाम्पत्य-प्रेम वाञ्छनीय है और इसी लिये समस्त संसार मन ही मन इसकी कामना किया करता है।

किन्तु यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि आजकल वास्तविक दाम्पत्य-प्रेम हमारे देशमें बहुत कम दिखाई देती है। हम जिधर ही दृष्टिपात करते हैं, उधर ही हमें इसमें कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य दिखाई देती है। यह त्रुटि अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती है। किन्तु इसका सबसे बड़ा कारण स्त्री और पुरुषोंके स्वभाव एवं आचरणोंका वैषम्य होता है। सोमें शायद पाँच दम्पति भी ऐसे न मिलेंगे जिनमें इस प्रकारका वैषम्य विद्यमान न हो। इसी वैषम्यके कारण हमारे दाम्पत्य-जीवन आजकल दुःखमय हो रहे हैं।

प्राक्कथन ।

जब हम इस वैषम्यके कारण पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं, तब हमारा ध्यान स्त्री और पुरुषोंके शिक्षा-दीक्षा एवं उनके अधिकारोंकी ओर आकर्षित होता है। हम देखते हैं कि हमारे समाजमें पुरुष तो संपूर्ण स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं और स्त्रियां परतन्त्रताके जंजीरोंसे जकड़ी हुई हैं। पुरुष समुदाय यथेच्छ शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर सकता है, किन्तु स्त्रियां उससे वञ्चित रहती जाती हैं। पुरुष शासक और स्त्रियां शासित समझ जाती हैं। स्त्रियोंको सदा दासत्वके ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। उन्हें सिखाया जाता है, कि पति ही उनका जीवन सर्वस्व है, चाहे वह दुर्गुणी और अपाहिज ही क्यों न हो किन्तु दूसरी ओर पुरुषोंके मनमें ऐसे भाव भर दिये जाते हैं, जिससे वे स्त्रियोंको गैरकी जूती समझने लगते हैं। हमारी समझमें, स्त्री और पुरुषोंको यह परिस्थिति, उनकी यह शिक्षा दीक्षा और उनके यह भाव ही उनके दाम्पत्य-प्रेममें बाधा उपस्थित करते हैं।

आजकल स्त्रियोंको दासताके बन्धनसे मुक्त करनेके लिये चारों ओरसे अवाज उठाई जा रही है। समय समय पर इसके लिये आन्दोलन किया जाता है। कहा जाता है, कि जब पुरुषसमाज स्वेच्छापूर्वक सभी काम

प्राक्कथन ।

कर सकता है, तब स्त्रियोंको भी उसी तरह स्वतन्त्रता क्यों नहीं प्रदान की जाती ? हम स्त्री-स्वातन्त्र्य और स्त्री-शिक्षाके समर्थक होने पर भी, अपने पाठकोंको बतला देना चाहते हैं, कि दाम्पत्य-प्रेमकी अभिवृद्धिके लिये यह बातें उतनी आवश्यक नहीं हैं, जितना पुरुषोंके स्वच्छाचारका नियन्त्रण । स्त्रियोंको स्वतन्त्र करनेकी अपेक्षा पुरुषोंके स्वेच्छाचार पर नियन्त्रण रखना ही हमारे समाजके लिये अधिक हितकर और वाञ्छनीय है ; जिस प्रकार स्वतन्त्र रहनेके कारण पुरुष समाज पतित और स्वेच्छाचारी हो गया है, उसी तरह स्त्रियोंके लिये भी स्वतन्त्रता घातक सिद्ध हो सकती है । भारतकी स्त्रियां अपनी परतन्त्रताके कारण अब भी देवियां बनी हुई हैं । वे अपने आदर्शसे विचलित नहीं हुईं । किन्तु पुरुष समाज आदर्शसे नीचे गिर गया है—राक्षसोंकी श्रेणीमें परिगणित करने योग्य हो गया है । स्त्रियोंमें अब भी घर घर सीता और सावित्री जैसी सतियाँ दिखाई देती हैं, परन्तु पुरुषोंमें राम जैसा कोई एकपत्नीव्रतधारी नहीं दिखाई देता । ऐसी अवस्थामें हम स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता या अविद्याको उतनी घातक नहीं कह सकते, जितनी पुरुषोंकी स्वतन्त्रता या निरंकुशताको ।

पाश्चात्य देश बड़े उन्नत कहे जाते हैं । वहाँ स्त्री

प्राक्कथन ।

पुरुषोंको सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है, परन्तु संसारकी गतिविधिसे परिचित रहनेवाले पाठकोंको शायद यह न बतलाना होगा, कि उनकी नैतिक अवस्था कितनी पतित हुआ करती है । वहां स्त्री और पुरुषोंका व्याह एक खेल हो गया है । तलाकका बाजार दिन पर दिन गरम होता जा रहा है । कभी कभी तो व्याह होनेके बाद पहले ही सप्ताहमें स्त्री पुरुष एक दूसरेको तलाक देकर अलग हो जाते हैं । स्वतन्त्रता और स्वेच्छाचारके कारण उनकी रुचि ऐसी विचित्र हो जाती है, कि उन्हें उपयुक्त जीवन-संगी ही नहीं मिलता । इस स्वतन्त्रताके कारण वहांके लोग आजीवन दुःखी ही बने रहते हैं । न जाने कितने युवक युवतियां मन पसन्द प्रेमियोंको न पानेके कारण आत्म-हत्या कर लेते हैं, न जाने कितने आजन्म कुंवारे रह जाते हैं और न जाने कितनोंका जीवन इसी तरह संगियोंको बदलते ही बदलते पूर्ण हो जाता है । हम नहीं समझते कि वे क्षणभरके लिये भी मानसिक शान्ति अनुभव करते हों । हमारे देशवासी तो ऐसी स्वतन्त्रताको शायद दूरसे ही नमस्कार करना पसन्द करेंगे ।

भारतमें ऐसा नहीं है । यहां स्त्री और पुरुषकी बदलौवल नहीं हो सकती । विवाह होनेके बाद वे एक

प्राक्कथन ।

दूसरेको तलाक देकर अलग नहीं हो सकते। फलतः वे दोनों अपनेको एक दूसरेके अनुकूल बनानेकी चेष्टा करते हैं। इसके फल स्वरूप कुछ दिनोंके बाद वे अपना जीवन शान्ति पूर्वक बिताने और अपनी गृहस्थी सुचारु रूपसे चलानेमें सफलता प्राप्त करते हैं। इससे उनकी गृहस्थी अनेक अंशोंमें नन्दनकानन बन जाती है। यहां वह हाहाकार नहीं दिखाई देता, जो पाश्चात्य देशोंके प्राङ्गणमें उपयुक्त जीवन-संगी न मिलनेके कारण ताण्डव नृत्य किया करता है। वहां वह उद्वेग, वह चिन्ता और वह अशान्ति नहीं दिखाई देती, जो पाश्चात्य देशवासियोंके जीवनको भाररूप बना देती है। इसीलिये हम भारतकी वैवाहिक प्रथाका समर्थन करते हैं, इसीलिये हम स्त्रियोंकी परतन्त्रताका—उस परतन्त्रताका, कि जिसके कारण आज भी वे देवियाँ बनी हुई हैं—उतना विरोध नहीं करते। किन्तु हम विरोध करते हैं, पुरुष जातिकी उस स्वतन्त्रता, उस निरंकुशता और उन अधिकारोंका, कि जिनके कारण वे अपनी गृह देवियोंको पद पद पर अपमानित कर—उनके मनोभावोंको, उनकी सुविधाओंको बिना समझे बूझे उन्हें ठुकरा कर उनके जीवनको निरानन्दमय बना देते हैं। इसीसे हमारे देशमें दाम्पत्य-प्रेम पल्लवित नहीं हो पाता,

प्राक्कथन ।

इसीसे हमारी गृहस्थी पूर्ण रूपसे नन्दन कानन नहीं बन सकती और इसीसे हमारी जीवन यात्रा निर्विघ्न समाप्त नहीं होती ।

निरङ्कुशता चाहे पुरुषोंमें हो या स्त्रियोंमें—दोनोंके लिये समान घातक है । हमारी यह दृढ़ धारणा है, कि हमारे देशमें दाम्पत्य-प्रेमका जो अभाव पाया जाता है, वह पुरुषोंकीही निरङ्कुशता—उन्हींको स्वतन्त्रताका परिणाम है । पुरुषोंकी इस निरङ्कुशताने अबतक लाखों घर चौपट कर दिये हैं, लाखों स्त्रियोंको निराधार बना दिया है, लाखों ललनाओंका जीवन नष्ट कर दिया है और लाखों कुलवतियोंको वारवनिता बनाकर उन्हें बाजारमें बेश्यावृत्ति करनेके लिये बाध्य कर दिया है । यदि दाम्पत्य-जीवनको प्रेममय बनानेके लिये, गृहस्थीको सुचारुरूपसे चलानेके लिये और जीवन-यात्रा शान्ति और आनन्दपूर्वक पूर्ण करनेके लिये स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताका विरोध किया जा सकता है—उसकी आवश्यकता समझी जा सकती है तो इन्हीं कार्योंके लिये, इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये पुरुषोंकी निरङ्कुशताका उससे भी अधिक विरोध किया जा सकता है । यदि पुरुष समाज इस तरह अपने अधिकारोंका दुरुपयोग न करे, तो वह

प्राक्कथन ।

भी स्त्रियोंकी तरह आदर्श उपस्थित कर सकता है । वह भी नरसे नारायण हो सकता है ।

हृदय, मनोभाव और आचरणोंका दाम्पत्य-प्रेमकी मूलभित्ति है । दाम्पत्य-प्रेम उसी अवस्थामें उत्पन्न होता है, जब स्त्री और पुरुष दोनोंमें किसी प्रकारका छलकपट या अन्तर नहीं होता, जब दोनोंके हृदय विशुद्ध और पवित्र होते हैं; जब दोनों एक दूसरेके प्रति वफादार बने रहते हैं और जब दोनों अपने अधिकारों या अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग नहीं करते । प्रेम हृदयकी वस्तु है । हृदय हृदयसे नहीं छिपाया जा सकता । हृदय हृदयको पहचान लेता है । जहां विभिन्नता, अन्तर या छलकपट होता है, वहां एक दूसरे का हृदय कैसे मिल सकता है ?

किन्तु हम देखते हैं कि पुरुष स्वयं तो एक भी नियमकी पाबन्दी नहीं पसन्द करते और स्त्रियोंको कठिनसे कठिन नियमोंकी शृङ्खलासे जकड़ रखना चाहते हैं और चाहते हैं कि इतना करनेपर भी स्त्रियां उनको उसी दृष्टिसे देखें, जिस दृष्टिसे सीता और सावित्री अपने पतियोंको देखती थीं । यह देखकर हमें बहुत आश्चर्य होता है । पुरुष समाज यह क्यों नहीं समझ सकता कि स्त्रियोंके भी हृदय

प्राक्कथन ।

है, उनके भी बुद्धि है, उनके भी कुछ इच्छा है और उनके भी कुछ समझ हैं। वे यह क्यों नहीं समझ सकते कि वे स्वयं स्त्रियोंकी ओरसे जिन बातोंकी आशा रखते हैं, उन्हीं बातोंकी आशा स्त्रियां भी उनकी ओरसे रख सकती है। वे क्यों नहीं समझ सकते; कि यदि उनका आचरण अन्यायपूर्ण है, अनीतिमय है; पापमय है, स्वेच्छावार, निरङ्कुशता और छलकपटसे भरा हुआ है, तो वे स्त्रियोंका हृदय नहीं जीत सकते। वे क्यों नहीं समझ सकते कि ऐसी अवस्थामें दाम्पत्य-प्रेम नहीं हो सकता—हृदयसे हृदय नहीं मिल सकता।

हमने अपने दाम्पत्य-विज्ञानमें, न केवल दाम्पत्य-विज्ञानमें ही बल्कि दाम्पत्य-ग्रन्थावलीकी समस्त पुस्तकोंमें उपरोक्त समस्या पर विचार किया है और अधिकतर स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको ही चरित्र-सुधारकी सलाह दी है। किन्तु दाम्पत्य-जीवनको सुखी बनानेके लिये केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। मानव-जीवनमें—स्त्री और पुरुष दोनोंके जीवनमें और भी अनेक घटनाये' ऐसी घटित होती हैं जो उनके दाम्पत्य-जीवनको विशृङ्खलित बना देती है, उनकी सोनेकी गृहस्थीको मिट्टीमें मिला देती हैं और उनके जीवनको सदाके लिये अशान्त बना देती हैं। सन्तान

प्राक्कथन ।

वृद्धि, अतिविहार, नाना प्रकारके रोग, काम-शास्त्रकी अज्ञानता, आदि ऐसी ही बातें हैं। हमने इस पुस्तकमें यथासाध्य इन बातों पर भी प्रकाश डाला है और अपने पाठक एवम् पाठिकाओंको दाम्पत्य-जीवनको सुखी बनाने-के उपाय बतलानेकी चेष्टा की है।

आजसे प्रायः तीन वर्ष पहले इसी उद्देश्यको लेकर हमने दाम्पत्य-ग्रन्थावली प्रकाशित करनेका संकल्प किया था और उसका प्रथम पुष्प “दाम्पत्य-विज्ञान” पाठकोंके कर-कमलोंमें रक्खा था। हमें यह देखकर सन्तोष हुआ, कि जनताने इसका यथेष्ट आदर किया। इसकी समस्त प्रतियां प्रायः एक ही वर्षमें बिक गयीं और बहुत दिनोंतक हमारे पाठकोंको इसके द्वितीय संस्करणकी राह देखनी पड़ी। हमें यह देखकर और भी सन्तोष हुआ, कि हमारी इन पुस्तकोंको पाठकोंने उसी दृष्टिसे देखा, जैसा कि हम चाहते थे। हिन्दी पुस्तकोंका बाजार “कोक-शास्त्र” कहलानेवाली पुस्तकोंसे गन्दा हो चुका था, इसलिये हमें भय था कि कहीं हमारे पाठक हमारे इस उद्योगको भी उसी ढङ्गका न समझ लें और हमारी पुस्तकोंको भी उसी श्रेणीमें परिगणित न कर लें। हमारे कतिपय विद्वान बन्धुओंने, देशके सुप्रसिद्ध पत्र पत्रिकाओंने और

प्राक्कथन ।

अनेकानेक अपरिचित किन्तु हमारे शुभ चिन्तक पाठकोंने इस पुस्तकके सम्बन्धमें अपनी जो सम्मति प्रदान की, उससे हमें पूर्ण सन्तोष हुआ। हमारा उत्साह बढ़ा और हमने कई पुस्तकें इस ग्रन्थमालामें प्रकाशित कीं। हमें यह देखकर हर्ष हुआ, कि दाम्पत्य-विज्ञानकी भांति ही जनताने उनको भी अपनाया और आदर किया। अनेक सहृदय पाठकोंने तो कन्या और पुत्रोंको, उनके विवाहके समय यह पुस्तकें उपहार भी दीं। यह पुस्तकें जनताको जिस प्रकार सन्मार्ग दिखा रही हैं—उनके दाम्पत्य-जीवनको सुखमय बनानेमें जिस तरह सहायक हो रही हैं, उसे देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं—हमने अपने परिश्रमको सार्थक मान लिया है।

आज दाम्पत्य-विज्ञानका यह द्वितीय संस्करण पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जा रहा है। इस बार इसमें (१) काम-वृत्तिका दुरुपयोग (२) गृहिणी कर्त्तव्य और (३) सुखी जीवन—यह तीन अध्याय बढ़ा दिये गये हैं। यह कितने उपयोगी हैं, इसका निर्णय पाठकगण स्वयं कर सकते हैं, प्रथम संस्करणमें भूमिका न थी—एक छोटा सा वक्तव्य था। इस बार इस प्राक्कथन द्वारा उस त्रुटिको भी दूर करनेकी चेष्टा की है। और भी अनेक

प्राक्कथन ।

स्थानोंमें शुद्धिबृद्धि की गयी है । प्रथम संस्करणमें करीब २०० पृष्ठ थे, किन्तु इस बार ३०० हो गये हैं । फिर भी मूल्यमें केवल आठ ही आनेकी वृद्धि की है । अजिल्द का मूल्य २) और सजिल्द का २॥) कर दिया है, ताकि पाठकों-को उतने ही मूल्यमें अधिक पाठ्य-सामग्री मिल सके । आशा है कि हमारे पाठक इसे और इस ग्रन्थावलीकी अन्यान्य पुस्तकोंको इसी तरह अपना कर हमें उत्साहित करते रहेंगे ।

द्वितीय संस्करण

सन् १९२७

}

—लेखक प्रकाशक ।



विषय-सूची ।

विषय ।	पृष्ठ
१ किशोरावस्था और यौवन	१७
२ ब्रह्मचर्य	२८
३ हस्तमैथुन	४७
४ वीर्यस्त्राव	६५
५ विवाह	८७
६ शयनगृह	६८
७ प्रेमोपचार	१०७
८ सहवास किंवा गर्भाधान	१२०
९ सहवास करनेवालोंकी अवस्था	१२६
१० ऋतुकाल	१३६
११ सहवासका समय	१५१
१२ अतिविहार	१५८
१३ कामवृत्तिका दुरुपयोग	१६६
१४ वंश-वृद्धि	१६४
१५ उत्तम सन्तान	२२०
१६ गृहिणी-कर्त्तव्य	२४७
१७ सुखी-जीवन	२७७

दाम्पत्य-विज्ञान



किशोरावस्था और यौवन



जिस तरह किसी इमारतको बनानेके लिये नींवकी आवश्यकता पड़ती है अथवा किसी गाड़ीको गतिशील करनेके लिये पहियोंकी आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी तरह गृहस्थीको सुरम्य और सुसम्पन्न बनानेके लिये दाम्पत्य-जीवनकी आवश्यकता है। जबतक तनुष्यका दाम्पत्य-जीवन नहीं आरम्भ होता तबतक उसका जीवन अपूर्ण रहता है— तबतक वह इस संसारकी गतिक का पूर्ण सहायक नहीं हो सकता। त्यागी, संन्यासी अथवा

-दाम्पत्य- विज्ञान-

उन महापुरुषोंकी बात हम नहीं कह रहे हैं, जिन्होंने इस जगतको मिथ्या समझकर, इस भव-जालसे अपना सम्बन्ध ही त्याग दिया है। हमारा यह कथन उनके लिये है, जो इस जगतमें रहकर, जगतके सब कार्य चलाते हुए, ईश्वरकी सृष्टिकी वृद्धिमें उसका हाथ बटाना चाहते हैं। सारांश यह, कि दाम्पत्य-जीवन उनके लिये परम आवश्यक है, जा इस जगतमें अपनी स्थिति सुचारु बनाना चाहते हैं और जा सदा प्रकृतिसे युद्ध करनेके लिये तैयार रहते हैं। पर यह दाम्पत्य-जीवन क्या है और क्योंकर इसका आरम्भ होता है तथा यह कभी सुखकर और कितनी ही अवस्थाओंमें एकदम असह्य दुःखकर कैसे हो जाता है?—प्रस्तुत पुस्तक का यही विषय है और इससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंपर इसमें विचार किया गया है।

अंग्रेजीके विख्यात लेखक स्माइल्स (Smiles) का कथन है, कि मनुष्य अकेला रह ही नहीं सकता—उसका अकेला—एकान्त-जीवन उसके लिये एक भार रूप है। Man can not live alone for himself. अतएव जब मनुष्य अकेला रह ही नहीं सकता है, तो उसके लिये एक ऐसे साथी, संगी, सहचर या बन्धुकी परम आवश्यकता है, जो उसके सुख-दुःख, आपद-विपद,

- दाम्पत्य-विज्ञान -

बुरे सचमें सहायक हो । इतना ही नहीं, इससे भी बढ़कर, एक उद्देश्य और भी उत्पन्न हो जाता है । अच्छे-बुरे, आपद-विपद, या सुख-दुःखमें पुरुषका पुरुषबन्धु भी हो सकता है—यदि किसी पुरुषको एक पुरुष बन्धु मिल जाय, तो क्या उसका दाम्पत्य-जीवन आरम्भ हो जायगा ? नहीं, क्योंकि दाम्पत्य-जीवनके लिये एक ऐसे साथीकी आवश्यकता है, जो उसके सभी कामोंका साथी हो, जिसके द्वारा इस संसार-जगतकी प्रगतिमें सहायता मिले । अतः दाम्पत्य-जीवनकी व्याख्या इस भांति की जा सकती है, कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सब कर्मोंका जो सहायक हो, वही पूरा बन्धु है और वह पूर्ण बन्धु, पुरुष नहीं बल्कि स्त्री ही हो सकती है । हमारे शास्त्रकारोंका तो स्त्रीजातिके सम्बन्धमें स्पष्ट मत वर्तमान है, कि —

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।

धर्मानुकूला जमया धरितो भार्या च षड्गुण्यवती सुदुर्लभाः ॥

अर्थात् स्त्री एक ऐसी संगिनी है, जो परामर्शमें तो गृहराज्य, जिसका राजा पुरुष है, उसकी वह मन्त्री है, काम करनेके समय दासी, खिलानेके समय माता, और सोनेके समय रम्भा जैसी मदन-ब्रीड़ा-सहचरो । बताइये, इससे बढ़कर साथी और कौन हो सकता है ? अतः यह

- दाम्पत्य-विज्ञान -

सिद्धान्त निकला, कि स्त्री-पुरुषकी एक सम्मिलित जीवन-यात्राका ही नाम दाम्पत्य-जीवन है ।

दाम्पत्य-जीवन सुखोंकी खान और सुचारु सम्पादन न होनेपर दुःखोंका आगार है । ठीक एक टमटमवाली दशा समझ लीजिये—जिस तरह दो पहियेकी गाड़ीका एक पहिया भी अगर बिगड़ गया, तो वह गाड़ी बेकार है, उसी तरह इस गृहस्थी रूप दुपहिया गाड़ीके पुरुष अथवा स्त्री इन दोनोंमेंसे एक पहिया भी यदि बिगड़ा, तो गृहस्थी रसा-तलको पयान कर जायगी । ऐसा क्यों होता है—यह बातें अगले अध्यायोंमें आपको मिलेंगी । हम तो अभी और भी पीछे ही लौटकर अपने पाठकोंको यह बताना चाहते हैं, कि इस दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ और पूर्वाभास कैसा होता है तथा उसमें और क्या क्या रहस्य छिपे रहते हैं, जिनके कारण दाम्पत्य-जीवन सुखकर या दुःखकर हो सकता है ।

दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ ठीक ठीक समझनेके लिये, हम उस अवस्थासे अपना कथन आरम्भ करते हैं, जब कि लड़कपन बीत जाता है और किशोरावस्था अर्थात् वह अवस्था आरम्भ होती है, जब शरीर पुष्ट होने लगता है तथा बालक के सभा अवयव एक प्रकारसे शक्ति-सम्पन्न होने लगते हैं । हम इस अवस्थाका आरम्भ तेरह वर्षकी अवस्थासे करते हैं

-दाम्पत्य-विज्ञान-

इस उम्रमें आकर अवयवोंकी पुष्टिके साथ ही साथ मनुष्यका मन भी पुष्ट होने लगता है और मस्तिष्क भी विशेष ग्रहण-शील तथा शक्ति-सम्पन्न होने लगता है। सारांश यह, कि यह वह अवस्था है, जब हमारा विकास आरम्भ हो जाता है। वेद्य-शास्त्रियोंका कथन है, कि इस उम्रमें आनेपर वीर्य उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियाँ उत्तेजित होने लगती हैं और मनोभावोंमें चञ्चलता उत्पन्न हो जाती है।

जब बालक इस अवस्थामें पहुँचता है, तब वह देखता है, कि उसके सभी अवयवोंमें एक प्रकारका स्फुरण आ गया है। यह स्फुरण या तेजी प्राकृतिक होती है। इसमें अस्वाभाविकता बिलकुल नहीं है। इसका कारण यह है, कि जब शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है, तब सहज ही मन एक प्रकारका वह सुख और वह तेज अनुभव करने लगता है, जो अबतक कभी न हुआ था। हमारे कथनका यह तात्पर्य नहीं है, कि यह काम बारह-तेरह वर्षकी अवस्थामें ही पूर्ण हो जाता है, बल्कि ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों त्यों यह भी होता जाता है और मानसिक चञ्चलताकी गति भी तेज होती जाती है।

यह बात केवल किशोर पुरुषमें ही नहीं, बल्कि स्त्री—

-दाम्पत्य- विज्ञान-

किशोरीमें भी दिखाई देती है। प्रकृतिका नियम कुछ ऐसा ही है। इस अवस्थामें आनेपर, दोनोंकी ही एक-सी वृक्षा हो जाती है। यदि पुरुषकी किशोरावस्था कुछ विलम्बसे आती है, तो लड़कियोंकी उससे कुछ शीघ्र ही आ जाती है। एक बात और भी है—बालकके लिये दौड़-धूप, खेलकूद तथा चिल्लाना और जोरसे बोलना हितकर है। इससे उसका मन खुलता है और शरीर पुष्ट होता है। बालिकाओंके सम्बन्धमें भी यही बात है; परन्तु जो बालिकायें पुरुषोचित खेल कूद या व्यायाममें संलग्न रहती हैं, उनका विकास अति शीघ्र होता है। उनके मनकी चंचलता अति वेगसे बढ़ती है और वे किशोरावस्थाको पारकर यौवनावस्थामें भी अति शीघ्र जा पहुंचती हैं। इसीलिये, बालिकाओंके खेलकूद तथा व्यायाम भी अन्य प्रकारसे ही जुने गये हैं।

हां, तो इस किशोरावस्थामें आनेपर मनकी गति जब बढ़ती है, शरीर तथा इन्द्रियां जब पुष्ट होने लगती हैं, जब शरीरमें धातु बढ़ जाती है—यह न समझना चाहिये, कि इस अवस्थाके पहले शरीरमें वीर्य था ही नहीं,—था अवश्य पर उसमें तेज नहीं था, उसमें गति-शीलता न थी—तब किशोर या किशोरी स्वाभाविक ही इस बातका अनुभव करते हैं, कि यह क्या और क्यों हो रहा है? बारंबार यह

-दाम्पत्य-विज्ञान-

स्फुरण क्यों होता है ? मन रह रहकर किसी अप्रत्याशित, अयाज्जित पदार्थको क्यों खोजने लगता है ?

यह अवस्था बड़ी ही पिच्छिल—फिसलनेवाली होती है । कोई कोई इसे यौवनावस्था भी कह देंगे, परन्तु कल भारतमें विवाह प्रथा जिस ढंगसे प्रचलित हो रही है, उस पर विचार कर लोग इसे यौवनावस्था ही कहेंगे, पर हम यह माननेको तैयार नहीं हैं । हम इसे तबतक यौवनावस्था न कहेंगे, जबतक कि शरीरका—इन्द्रियोंका और मनका पूर्ण विकास न हो जाये ।

बालक बालिकाओंके माता पिता या अभिभावक इसी अवस्थाको उनकी यौवनावस्था समझकर, उन्हें यदि दाम्पत्य जीवनमें लगा दें, यदि इस अवस्थामें उनकी रक्षा न करें, उन्हें उस पथका अधिकारी बना दें, जो यौवन प्राप्त होनेपर उचित है, तो इससे वे क्या हानि कर बैठेंगे और उनका दाम्पत्य-जीवन कैसा दुःखदायी हो जायगा, यह बात तो आपको आगे चलकर मालूम होगी । हम इस अध्यायमें इतना ही कहेंगे, कि इस अवस्थामें इन्द्रिय उत्तेजना और मनकी चंचलता आरम्भ हो जाती है । किशोर किशोरी उस स्वप्न-राज्यमें प्रवेश करना आरम्भ कर देते हैं, जो दाम्पत्य जीवनका श्रीगणेश है ।

- दाम्पत्य - विज्ञान -

यही अवस्था दाम्पत्य-जीवन-यात्राको सुखमय या दुःखमय बनानेके यन्त्रके समान है। इसी अवस्थामें संगति, परिस्थिति, पारस्परिक सम्बन्ध और वायुमण्डलका विशेष प्रभाव होता है। यही वह अवस्था है, जब किशोर किशोरियोंके अभिभावकोंके सम्मुख एक अति वृहत् कर्त्तव्य उपस्थित हो जाता है, यही वह अवस्था है, जिसमें संगति का ऐसा प्रभाव पहुंचता है, जो समस्त जीवन-यात्राकी गति ही बदल देता है ; इसीलिये भारतके उन्नतकालमें, किशोर वयस्कोंको गुरुगृहमें, बाहरके हानिकार वायुमण्डलसे दूर, एकान्त, पवित्र स्थानमें यह समय व्यतीत करनेका नियम था। यही वह अवस्था है जब परम तेजस्वी, शान्त-शील, ब्रह्मचारी अथवा दिव्यदर्शी तपस्वी गुरुके यहाँ रहकर बालक इस घोर उपद्रवमयी अवस्थाको शान्तभावसे व्यतीत कर देते थे। यह वह अवस्था है, जब ऋषिकुल अथवा गुरुकुलोंमें रहकर, किशोरवयस्क बालक उन कलाओंको हस्तगत करते थे, जो उनके जीवन-यात्राकी संगिनी बनकर उन्हें उच्चसे उच्च ध्येय और उद्देश्यपर पहुँचा देती थी। हा ! आज वे दिन कहाँ गये ? सारांश यह, कि यही अवस्था है, जब मनकी गतिको रोककर, अपनेको सब ओरसे दबाकर लोगों को विद्याध्ययन तथा शिक्षा प्राप्त करनेमें व्यतीत कर देना

-दाम्पत्य-विज्ञान-

चाहिये। पर जिस अभागि देशमें अब बारह वर्षों—जिस दो सन्तानोंकी जन्मदाता तथा सोलह वर्षका पुरुष दो सन्तानोंका पिता होने लगा है, वहां इस किशोरावस्थाके नियमोंका पालन तो एक विडम्बना-मात्र रह गया है।

किशोरावस्थाकी स्वाभाविक गति चञ्चल है। जिस तरह पवनके झकोरसे वृक्ष हिल उठता है, अथवा एक साधारणसा कम्पन होनेसे समस्त पर्वत-गात्र कम्पित हो जाता है, उसी तरह इस किशोरावस्थामें जरा भी मनोवृत्तियोंमें धक्का लगनेसे—यह धक्का चाहे परिस्थितिका हो या संगतिके प्रभावका—किशोर किशोरियोंकें गिर जानेका भय रहता है, क्योंकि मनोवृत्तियोंपर अधिकार रखने या दमन करने अथवा उनको किसी एक लक्ष्यकी ओर परिचालित करनेकी शक्ति उस समय उनमें नहीं रहती। यही कारण है, कि इस अवस्थामें विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

क्रमशः किशोर-किशोरियां, ज्यों ज्यों अपनी जीवन-यात्रामें अग्रसर होती जाती हैं—ज्यों ज्यों उनकी उम्र बढ़ती जाती है, त्यों त्यों वे इन मनोभावोंके भीतर अग्रसर होते जाते हैं, उनकी प्रकृति, उनका मन—एक वह पदार्थ खोजने लगता है, जिसको उसका प्रकृत साथी कह सकते हैं। इस तरह यह अवस्था क्रमशः यौवनमें जा पहुँचती है।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

यौवनावस्थामें शरीरके सभी अवयव परिपुष्ट हो जाते हैं, मनोभाव साथ ही साथ अधिक तीव्र, अधिक चञ्चल और अधिक वेग-शील हो जाते हैं। यह वह अवस्था है, जब मनुष्यका शरीर पूर्णता प्राप्त करता है। जिस तरह ऋतुराज वसन्तका आगमन होनेपर समस्त प्रकृति एक अपूर्व मनोहर वेश, एक अलौकिक प्रभा और एक असाधारण शोभा धारण करती है, ठीक वैसे ही मानव शरीर भी धारण करता है। ठीक उसी तरह मानव शरीरमें भी वैसा ही एक प्रकारका उन्माद उत्पन्न हो जाता है। यह उन्माद या प्रवृत्ति मनुष्यको जिस साथीकी आवश्यकता पैदा करती हैं, वह स्त्री है। इसी स्थानसे दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ किंवा सूत्रपात होता है।

यही वह अवस्था है, जब मनुष्यके लिये विवाह बन्धनमें बँधना आवश्यक है। पुरुषोंकी यह अवस्था यदि बीस या पच्चीसवर्षकी उम्रमें आरम्भ होती है तो भारतकी स्त्रियां इसे अपनी पन्द्रह या सोलह वर्षकी उम्रमें ही प्राप्त कर लेती हैं। इस अवस्थामें दोनोंको अपने अपने साथीकी आवश्यकता आ पड़ती है और इसी अवस्थासे उनका दाम्पत्य-जीवन आरम्भ होता है।

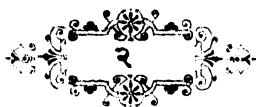
पुरुष और स्त्रीके इस जोड़ेका नाम ही दम्पति है। जिस

-दाम्पत्य-विज्ञान-

समयसे दोनो विवाह सूत्रमें आवद्ध हो जाते हैं एवम् जबसे उन दोनोंमें अविच्छिन्न सम्बन्ध हो जाता है अथवा यों समझ लीजिये, कि जब पुरुष अपने गृहराज्यमें एक मन्त्री या गृहराज्यकी अधिष्ठात्री देवीको लाकर बैठा देता है—तभीसे दाम्पत्य-जीवन आरम्भ होता है—और तबतक वर्त्तमान रहता है, जबतक उनका अस्तित्व लोप नहीं हो जाता ।

दाम्पत्य-जीवन मनुष्यमात्रके लिये आशास्थान होता है । सभी उसके सुखोंके लिये लालायित हो क्यों, व्याकुल बने रहते हैं । परन्तु ब्रह्मचर्यका अभाव, हस्तमैथुन और वीर्यस्राव प्रभृति दुर्व्यसन किंवा व्याधियाँ—तथा ओर कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनके कारण मनुष्यको उस स्वर्गीय सुखसे वञ्चित रहना पड़ता है । अगले अध्यायोंमें इन्हीं सब बातोंपर विचार कर हम उन उपायोंका उल्लेख करेंगे, जिनके अवलम्बनसे यह सुख अधिक सुलभ और मधुर बनाया जा सकता है ।





ब्रह्मचर्य



जि स ब्रह्मचर्यके धारणसे इच्छानुसार जीवनीशक्ति बढ़ाई जा सकती है, जिस ब्रह्मचर्यके अव-
 म्बनसे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो सकती है, जिस ब्रह्मचर्य-
 के प्रतापसे मनुष्य अपनी यथेच्छ उन्नति कर सकता है—
 नरसे नारायण तक हो सकता है, उस ब्रह्मचर्यका गुणगान
 करना किसी जड़ लेखनीका काम नहीं। ब्रह्मचर्य ही
 मनुष्यका प्राण, ब्रह्मचर्य ही मनुष्यका पौरुष और ब्रह्मचर्य
 ही मनुष्यका जीवन है। ब्रह्मचर्यकी महिमा अपरम्पार है।
 संक्षेपमें उसे वर्णन करनेकी चेष्टा सागर भरनेके
 समान है।

हम पहले ही बतला चुके हैं, कि किशोरावस्थामें पदार्पण
 करते ही समस्त इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठती हैं। शरीरमें बल

-दाम्पत्य-विज्ञान-

और मनमें साहसका सञ्चार होता है। संसारके समस्त पदार्थोंमें वसन्तकालीन कुसुमित काननकी भाँति सर्वत्र नवीनता और रमणीयता दिखाई देने लगती है। मन नयी नयी तरङ्गोंसे भर जाता है। स्त्री और पुरुष दूसरी-दूसरी नेस्हभरी दृष्टिसे देखने लगते हैं। वे इस बातका पता लगाने लगते हैं, कि संसारमें स्त्री और पुरुषोंका कैसा सम्बन्ध है—वे क्या करते हैं, कैसे रहते हैं। इस रहस्यका पता पाते न पाते उनपर यौवन अधिकार जमा लेता है और वे एकबार ही सांसारिक सुख भोग करनेके लिये व्याकुल हो उठते हैं।

यह सुखोपभोगकी लालसा न केवल पुरुषोंमें ही दिखाई देती है, बल्कि स्त्रियोंको भी व्याकुल बना देती है। स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका प्रश्रय प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो उठता है। दोनों अपने अपने मनमें, न जाने कितनी बातें सोचते हैं और कितने सुखोंकी कल्पना किय करते हैं। ब्याह होनेपर क्या करेंगे, किस प्रकार रहेंगे, कैसे जीवन निर्वाह करेंगे—इन्हीं बातोंके सोच विचारमें कहव विभोर हो जाते हैं। स्त्री पुरुषके और पुरुष स्त्रियोंके ध्यानमें निमग्न रहते हैं। अन्तमें एक दिन उनकी वह आकांक्षा पूरी होनेका समय आ पहुँचता है। अपने देश,

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कुल और जातिकी रस्में अदा होनेपर दो भिन्न भिन्न हृदय अपनेको एक ही प्रणयसूत्रमें आवद्ध पाते हैं। उस समय उनके हृदय भावी सुखोंकी कल्पना कर आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं—मन मत्त मयूरकी तरह नाचने लगता है। बस, दोनों निःसंकोच भावसे दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण कर अपनेको धन्य समझने लगते हैं।

संसारमें हम सब लोगोंकी एकबार यही दशा होती है। हम सब लोग एकबार इन बातोंको अनुभव करते हैं। परन्तु उस समय हमें इस बातका ज्ञान नहीं होता, कि यह सब कुश्रुतुके बादलोंकी तरह असमयके ही विकार है। जिस तरह कच्ची भूखमें खा लेनेसे लाभके बदले हानि होती है, उसी तरह उचित समयके पहले इन्द्रिय-परिचाजन करनेसे स्वास्थ्य और यौवन मिट्टीमें मिल जाता है। परन्तु यह बातें हमें उसी समय मालूम होती हैं, जब हमारे सर्व-नाशका समय समीप आ पहुंचता है। पहले तो हमें चारों ओर सज्ज वाग ही दिखाई देते हैं और दिखाये जाते हैं, परन्तु बादको मालूम होता है, कि हम पथभ्रष्ट होकर निर्जन मरुभूमिमें आ पहुंचे हैं।

हमारे देशमें दाम्पत्य-विज्ञानकी शिक्षा बच्चोंको पहलेसे नहीं दी जाती। स्कूल, भूगोल और इतिहास रटानेके लिये

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हैं। मास्टर अक्षर-ज्ञान सिखलानेके लिये हैं। माता पिता इन बातोंकी शिक्षा देना अनुचित और लज्जास्पद समझते हैं। फल यह होता है, कि दाम्पत्य-जीवनको सुखमय बनानेके लिये जिन बातोंका जानना परमावश्यक है, उनका उन्हें किंचित भी ज्ञान नहीं मिलता। अज्ञानताके कारण बहुधा वे ऐसी भूलें कर बैठते हैं, ऐसे अनर्थ कर डालते हैं, जिनके कारण उनकी जीवन धारा ही पलट जाती है। उन्हें अपने कृत-कर्मोंके कारण आजन्म पश्चात्ताप करना पड़ता है। लाख चेष्टा करने पर भी ये अपने जीवनको सुखमय नहीं बना सकते।

यदि एक बच्चेको यह न बतलाया जाय, कि आगको छूनेसे हाथ जल जाता है और उस आगके साथ खेलनेके लिये छोड़ दिया जाय, तो उस बच्चेको अपना हाथ जला कर यह शिक्षा ग्रहण करनी होगी, कि आगको छूनेसे हाथ जल जाता है अतः उसके साथ इस तरह न खेलना चाहिये। ठीक यही दशा हम लोगोंकी है। बिना किसी प्रकारकी सूचना दिये ही हमलोग दाम्पत्य-जीवनका मजा लूटनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं। हमलोग पहलेसे ही उसके लिये लालायित रहते हैं, पहलेसे ही ऐश आराम और चैनसे दिन काटनेकी बातें सोचा करते हैं, इसलिये बिना कुछ सोचे

- दाम्पत्य-विज्ञान -

विचारे ही उसे लूटनेके लिये टूट पड़ते हैं। परन्तु कुछ ही दिनोंमें हमें मालूम हो जाता है, कि यह तो लोहेके चने हैं। जिसको शरदकी शीतल चन्द्रिका समझ रक्खा था, वह ग्रीष्मका भयंकर दावानल है। जिस खीरको सीध्री सादी समझ रक्खा था, वह बड़ी टेढ़ी है। उस समय उस जले हुए बच्चेकी तरह हमारा भ्रम दूर हो जाता है। दावानलमें झुलस जानेके बाद हमें मालूम होता है कि उस जलती हुई अग्निमें कूद पड़ना हमारा काम न था। हमने बड़ी जल्दबाजीसे काम लिया, बड़ा दुःसाहस किया। परन्तु अब सोचनेसे क्या लाभ? जिस प्रकार नौब टेढ़ी हो जाने पर फिर मकान सीधा नहीं हो सकता, उसी तरह अब हमारा जीवन भी सुखमय नहीं हो सकता। अब हमारी आकांक्षा पूर्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगी। अब हमें लाचार होकर या तो क्षणिक, असार और पापपूर्ण कहकर दाम्पत्य जीवनके सुखोंकी आशा ही छोड़ देनी होगी या अपने अनुभवोंके सहारे शेष जीवनको सुखमय बनानेकी चेष्टा करनी होगी।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि किसी कामको करनेके पहले उसका ज्ञान प्राप्त कर लेना परमावश्यक होता है। संसारमें सर्वत्र यही बात—यही नियम दिखाई देता है।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

लोग सामने देख लेते हैं, तब कदम बढ़ाते हैं ; परन्तु दाम्पत्य-विज्ञानके सम्बन्धमें सर्वथा विपरीतही बात दिखाई देती है। हमें अन्धकारमय शून्यमें ही कूदना पड़ता है। अपने निजी अनुभवसे हो शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। परन्तु वह शिक्षा प्राप्त करना क्या सहज है ? कितना भयंकर पथ है ? मार्गमें कितने प्रलोभन, कितने काँटे, कितने जाल बिछे रहते हैं ? जरा भी चूके, कि सर्वनाश हुआ। इसीलिये कहते हैं, कि हथेलीमें जान लेकर हमें यह शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। हममेंसे बहुत ही कम —बिरला ही यह शिक्षा प्राप्त कर सुरक्षित रूपसे बाहर निकलता है। अधिकांश उसी दावानलमें झुलस जाते हैं, असमयमें ही अपना स्वास्थ्य और यौवन खो बैठते हैं। इस शिक्षा प्राप्ति की परीक्षामें जिसे जितनी ही सफलता मिलती है, उतना ही उसका जीवन चैनसे कटता है। जिन्हें सफलता नहीं मिलती, वे भाग्यको कोसते हुए मृत्यु-कामना करते हैं और अपने कृत कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करते हुए उसकी शान्तिमयी गोदमें प्रश्रय ग्रहण करते हैं।

दाम्पत्य-जीवन इस तरह दुःखमय न हो जाय इसलिये, स्त्री पुरुषोंको पहलेसे ही दाम्पत्य-विज्ञानकी शिक्षा मिलनी चाहिये। उन्हें पहलेसे ही भावी जीवनको सुखमय

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बनानेके लिये तैयारियाँ करनी चाहिये । उन तैयारियोंका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है । अपने आपको दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करने योग्य बनाना—यही ब्रह्मचर्यका एकमात्र उद्देश है । वैज्ञानिकोंका कथन है, कि पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले पुरुष और सोलह वर्षकी अवस्थाके पहले स्त्रियोंको सांसारिक भ्रमेलोंमें न पड़ना चाहिये । उस अवस्थामें दोनोंका वीर्य परिपक्व और अंग सुदृढ़ हो जाते हैं, अतः स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं रहती और जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह सुन्दर, दृष्टपुष्ट और दीर्घायु होती है । इसलिये इस समय तक ब्रह्मचर्य व्रत अवश्य धारण करना चाहिये । इसमें कोई सन्देह नहीं कि दाम्पत्य-जीवनकी मधुरता, वानप्रस्थाश्रमकी तपस्या और संन्यासाश्रमका ब्रह्मज्ञान ब्रह्मचर्याश्रमके वीर्य-रक्षण पर ही निर्भर करता है । इसलिये जो लोग ब्रह्मचर्यकी उपेक्षा करते हैं, वे अपने जीवनमें क्षण भरके लिये भी सुख और शान्तिका रसास्वादन नहीं कर पाते ।

प्राचीनकालमें यहाँ आश्रम धर्म प्रचलित था । चार आश्रमोंमें ब्रह्मचर्याश्रम ही सर्व प्रधान और सर्व प्रथम था । उस समय ब्रह्मचारी गुरुके निकट किसी अरण्यके गुहकुलमें जाकर रहता था और विद्याध्ययन करता हुआ ब्रह्मचर्य

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पालन करता था। सम्प्रति हमलोगोंने आश्रम धर्मको शायद झूठा भ्रमेला समझकर जलाञ्जलि दे दी है। अब हम बचपनमें विद्याध्ययन अवश्य करते हैं, परन्तु वह एकान्त अरण्यके शान्तिमय गुरुकुलोंमें नहीं, बल्कि प्रवृत्तिप्रय नगरों-की उच्च अट्टालिकाओंमें, जिन्हें लोग स्कूल और कालेजोंके नामसे सम्बोधित करते हैं। वहाँ अब ब्रह्मचर्य पालन करनेकी हमें कोई शिक्षा नहीं देता। चाहे हम ब्रह्मचारी रहें, चाहे दुराचारी बन जायें कोई बोलनेवाला नहीं। अपने शरीरको बनाना बिगाड़ना हमारे हाथकी बात है। हम चाहे वीर्य रक्षा करें, चाहे अपना सर्वनाश कर लें—कोई कुछ न कहेगा। उस समय हमारी अवस्था छोटी रहती है। भले बुरेकी हमें पहचान नहीं। नयी उम्रकी नयी नयी उम्रों, यढ़ा हुआ दिल—बस अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होते देख, हम अपना सर्वनाश कर लेते हैं। प्रकृत किंवा अप्रकृत, स्वाभाविक किंवा अस्वाभाविक—किसी एक प्रक्रिया द्वारा, जिसमें सुविधा हुई—हम अपने मनोविकार-को शान्त करते हैं। हमें इसके लिये किसीको कुछ कहने या पूछनेका अधिकार नहीं।

प्राचीन कालमें यह सब न था। उन दिनों ब्रह्मचारी पर गुरुका कठिन नियन्त्रण रहता था। ब्रह्मचारिको यह

-दाम्पत्य- विज्ञान-

बात भली भाँति समझा दी जाती थी, कि “मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात्”—वीर्यपात ही मनुष्यकी मृत्यु और वीर्य धारण ही मनुष्यका जीवन है। उन्हें बता दिया जाता था, कि वीर्य क्या पदार्थ है और उसके धारणसे क्या लाभ होता है। उन्हें सूचना दे दी जाती थी, कि वीर्यपात करना और मृत्युको निमन्त्रण देना बराबर है। परन्तु आज यह बातें बतलाना हमारे शिक्षागुरुओंके अधिकारकी बात नहीं। अधिकांश माता पिता स्वयं इन बातोंको नहीं समझते और जो समझते हैं, वे बच्चोंको समझानेकी आवश्यकता नहीं समझते। ऐसी दशामें इन बातोंका सीखना, समझना और ज्ञान प्राप्त करना हमारे ही सिरपर आ पड़ता है। हमें चाहिये, कि इन विषयोंकी आलोचना कर हम समुचित ज्ञान प्राप्त कर लें, जिससे हमारा भावी जीवन दुःखमय न हो जाय।

प्राचीन कालमें ब्रह्मचर्याश्रम और उसके धर्म नियत थे। ब्रह्मचारीको किस प्रकार रहना चाहिये, किस प्रकार सोना बैठना और दिन बिताना चाहिये—आदि सभी बातें निश्चित थीं। परन्तु आजकलकी परिस्थिति उससे सर्यथा विपरीत है। अब पिछली बातोंका स्मरण करना भी अरण्य-रोदन समझा जाता है। आज हमें तपोवनकी पर्णकुटीके बदले

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बस्तीमें रहना पड़ता है। यदि हम विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहें, तो वह भी हमें वहीं रहते हुए करना होगा। प्राचीन कालमें माता पिता और जन-समाज की ओरसे इसके लिये जो सुविधायें दी जाती थीं, उनका मिलना असम्भव हो गया है। हमारे प्रत्येक कार्यमें, हमारी प्रत्येक बातमें—जमीन आसमानका अन्तर दिखाई देता है। मानो इस समय हम दूसरी ही दुनियामें बसते हैं, मानो वह वायुमण्डल ही बदल गया है इसलिये आज प्राचीन कालकी भाँति ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। फिर भी हम अपने पाठकोंके हितार्थ मुख्य मुख्य नियमोंको अंकित कर देना उचित समझते हैं। जो बच्चे समझदार हों, उन्हें स्वयं समझकर और जो माता पिता समझदार हों, उन्हें अपने बच्चों को समझाकर इस व्रतका पालन करना—कराना चाहिये।

ब्रह्मचर्यके दो अङ्ग हैं—वीर्य धारण और विद्याभ्यास। विद्याभ्यास हमारा विवेच्य विषय नहीं, अतः उसके सम्बन्धमें हम विशेष कहना नहीं चाहते। हमारी न्याय-शीला ब्रिटिश गवर्नमेण्टने जो शिक्षा प्रणाली नियत कर रखी है, उसीके अनुसार हमें शिक्षा मिलती है। शिक्षा प्राप्त कर हम कितने धर्मनिष्ठ, विद्वान, विवेकी और सद्गुण

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सम्पन्न बन जाते हैं—यह किसीसे छिपा नहीं। शायद ही ऐसा कोई भारतवासी हो जो इस शिक्षा-प्रणालीको दोष पूर्ण न समझता हो। महात्मा गान्धी जैसे तपस्वी और न्यायनीतिज्ञ पुरुषने भी इसकी घोर निन्दा की है। अतः इस विषयमें विशेष कहना व्यर्थ है। परन्तु इतना तो हम अवश्य ही कहेंगे, कि जिस शिक्षासे हम स्वावलम्बी न बन सकें, हममें जातीयता और राष्ट्रीयताके भाव न जागरित हों, हमारा धर्मप्रेम वृद्धिगत न हो, हम जीवन निर्वाहके लिये यथेष्ट धन भी न प्राप्त कर सकें, उस शिक्षाको शिक्षा न कहना चाहिये। हमें वही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, जिससे हम अपने पैरों खड़े हो सकें, स्वावलम्बन और वाणिज्य व्यवसाय द्वारा यथेष्ट धनोपार्जन कर अपना दाम्पत्य जीवन आनन्दसे बिता सकें। शिक्षा प्राप्त करनेपर भी हमें परमुखापेक्षो रहना पड़े तो वह शिक्षा ही व्यर्थ है।

ब्रह्मचर्यका दूसरा अंग है—वीर्य धारण। इसके सम्बन्धमें जितना ही कहा जाय, उतना ही कम है। ब्रह्मचर्य ही तो एक ऐसी वस्तु है, जिसके द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों प्रकारकी उन्नति की जा सकती है। ब्रह्मचर्य ही वह वस्तु है, जो मनुष्यको अजर अमर बना सकती है। ब्रह्मचर्यही वह वस्तु है,

-दाम्पत्य- विज्ञान-

जिसके द्वारा मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर संसारको स्वर्गके रूपमें परिणत कर सकता है ।

ब्रह्मचारीको अपने भोजनके सम्बन्धमें सदा सावधान रहना चाहिये । मद्य, मांस, गन्ध द्रव्य, माल्य और रसादि द्रव्योंका सर्वथा त्याग करना चाहिये । जो वस्तु स्वभावतः मधुर हो परन्तु किसी कारणसे खट्टी हो गयी हो, उसका भी सेवन न करना चाहिये । इन वस्तुओंके सेवनसे इन्द्रियां चंचल होती हैं और ब्रह्मचर्य नष्ट होनेको सम्भावना रहती है । पवित्र संकल्प, मातृभाव दृष्टि, सत्संग, सादगी, सद्-ग्रन्थावलोकन, निर्व्यसनता, नियमित व्यायाम, स्नाननिद्रा, अल्पाहार और कार्यशीलता प्रभृति कर्म ब्रह्मचारीके लिये परम आदरणीय और आचरणीय हैं । तैलमर्दन, आँखोंमें अञ्जन लगाना, पादुका व छत्र धारण करना, काम, क्रोध या लोभके वशीभूत होना, नाच देखना, गाना सुनना, बाजे बजाना, जूआ खेलना, वृथा बकवाद करना, दूसरोंके दोष दिखाना, मिथ्या बचन कहना, स्त्रियोंके प्रति कटाक्ष करना, उन्हें आलिङ्गन करना आदि सभी बातें ब्रह्मचारीके लिये त्याज्य हैं । उन्हें अकेले और पेसी शय्यामें सोना चाहिये, जो शरीरको अधिक आराम न दे सके । गुदगुदे गद्दोंपर सोनेसे भी दुर्भावोंका उदय होता है ।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

महर्षि पतञ्जलिने योग दर्शनमें लिखा है, कि “ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः” अर्थात् ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठासे परम शक्तिकी प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें महर्षि लोग इसी शक्तिको प्राप्त कर उन अलौकिक कार्योंको कर दिखाते थे, जिनके स्मरणमात्रसे दीन हीन भारतवासियोंके मृत कंकालमें आज भी प्राणका सञ्चार होने लगता है। इसी शक्तिको प्राप्त कर भीष्म पितामहने इच्छा-मृत्यु प्राप्त की थी और शर शय्यापर पड़े हुए, निर्वाणोन्मुख दशामें भी पवित्र ब्रह्मज्ञान और धर्म तथा नीतिका उपदेश दिया था ! वीर हनुमान और लक्ष्मणजीने भी इसी शक्तिको प्राप्त कर अलौकिक पराक्रम कर दिखाये थे।

वीर्य मनुष्यके शरीरका सर्वोत्कृष्ट सत्व है। उसीकी रक्षासे स्वास्थ्यकी रक्षा हुआ करती है। चिकित्सा शास्त्रका यह सिद्धान्त है, कि भुक्त अन्न पाकस्थलमें जाकर पहले रस बनता है। रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य बनता है। अन्नसे वीर्य बननेकी इस प्रक्रियामें ठीक एक मासका समय लगता है। एक बिन्दु वीर्य चालीस बुन्द रक्तके बराबर होता है। उसके एक एक कणमें सैकड़ों ऐसे जीवाणु या कीट होते हैं, जिनमें सन्तानोत्पादनकी शक्ति

-दाम्पत्य-विज्ञान-

विद्यमान रहती है। केवल इसी बातसे यह जाना जा सकता है, कि वीर्य कितना उपयोगी और कीमती पदार्थ है। वीर्य ही समस्त शरीरका प्राणरूप है। वीर्य धारण करनेसे प्राणकी पुष्टि, समस्त शरीरमें कान्ति और मानसिक शान्तिकी प्राप्ति होती है। वीर्यके नाशसे अनेक रोगों की उत्पत्ति होकर अन्तमें प्राण नाश होता है।

यदि दाम्पत्य-जीवन आनन्दसे बिताना हो, तो ब्रह्मचर्य अखण्ड रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन न करनेसे स्वप्नमें भी गार्हस्थ्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि : ब्रह्मचर्य दाम्पत्य-जीवनका मूल किंवा आधार स्तम्भ है। जिस तरह मूल नष्ट हो जानेपर वृक्षके शाखा और पत्र सुरक्षित नहीं रह सकते, उसी तरह ब्रह्मचर्य नष्ट हो जानेपर दाम्पत्य-जीवनके सुखोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्यमें विघ्न बाधा पड़ जाने पर समूचे जीवनका क्रम इस तरह बिगड़ जाता है, कि फिर वह लाख यत्न करनेपर भी ठीक नहीं होता।

पच्चीस वर्षकी अवस्था पर्यन्त, जो इस तरह ब्रह्मचर्य धारण कर दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करते हैं, उन्हें कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। न उनका स्वास्थ्य ही एका-एक नष्ट होता है, न वे असमयमें कालका प्रास ही बनते

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हैं। विवाह होनेके बाद भी जो लोग ऋतुकालके समय केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही स्त्रीसंग करते हैं, उन्हें भी शास्त्रकारोंने ब्रह्मचारी ही माना है। ऐसे मनुष्य भी सदा सुखी रहते हैं और बहुत दिनोंतक जीते हैं।

ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है, कि यह जीवनमें किसी समयसे भी धारण किया जा सकता है। सोलह वर्षसे पच्चीस वर्ष की अवस्था तक धातु और रसोंकी उत्पत्ति विशेष रूपसे होती है; अतः उस समयका ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट माना गया है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि दूसरी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण ही नहीं किया जा सकता। भुक्त अन्न द्वारा वीर्य बननेकी उपरोक्त क्रिया वृद्धावस्था पर्यन्त समान रूपसे हुआ करती है, अतः किसी समय भी वीर्य रक्षाकर शारीरिक बल और पौरुष बढ़ाया जा सकता है। जैसे दूधमें घी और ईखमें रस छिपा रहता है, उसी तरह रक्तमें वीर्य छिपा रहता है। स्वाभाविक किंवा अस्वाभाविक प्रकारसे इन्द्रिय परिचालन करनेपर जैसे दूधको मथनेसे मक्खन निकलता है, उसी तरह रक्तसे वीर्य प्रस्तुत होता है। इन्द्रिय परिचालन करने पर वही वीर्याशयमें संचित होकर अन्तमें बाहर निकलता है। साधारण दशामें वह समस्त शरीरमें

-दाम्पत्य-विज्ञान-

व्याप्त रहता है। इसलिये जो लोग वीर्यका अपव्यय कर चुके हों, उन्हें भी हिम्मत न हारकर ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। इसके प्रतापसे अपनी अवस्था, शारीरिक स्थिति और खान पानके अनुसार वे पुनः शक्ति संचय कर सकेंगे।

परन्तु ध्यानमें रखनेकी बात है, कि ब्रह्मचर्यका पालन मन, वचन और कर्म—तीनों द्वारा होना चाहिये। शारीरिक ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा मानसिक ब्रह्मचर्य विशेष महत्व रखता है। यदि कोई बाह्य नियमोंका ठीक ठीक पालन करता हो; उसके आचार ब्रह्मचारी ही की तरह विशुद्ध हों—इन्द्रिय परिचालनादि न करता हो, किन्तु यदि उसके विचार कुत्सित रहते हों, तो उसे हम कदापि ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। इस अवस्थामें वह अधिक दिनोंतक बाह्यनियमोंका पालन भी नहीं कर सकता। विचार दूषित होनेके कारण उसके आचार भी ठीक न रह सकेंगे। प्रमेह और वीर्यस्राव प्रभृति कुत्सित विचारोंके कारण उत्पन्न होनेवाली व्याधियोंके कारण उसका ब्रह्मचर्य अवश्य नष्ट हो जायगा। इसी लिये ब्रह्मचारीको अपने आचारकी अपेक्षा विचार पर अधिक नियन्त्रण रखना चाहिये। बिना मानसिक ब्रह्मचर्यके शारीरिक ब्रह्मचर्य निभ ही नहीं सकता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो जितने ही परिमाणमें

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ब्रह्मचर्य धारण करेगा, वह उतने ही परिमाणमें अधिक शक्तिशाली होगा। जिसका एक बार भी ब्रह्मचर्य भंग हुआ हो, वह अखण्ड ब्रह्मचारीके मुकाबले कदापि नहीं ठहर सकता। परन्तु इससे किसीको निराश न होना चाहिये। “जबसे जाना तबसे माना” इस उक्तिके अनुसार जिस दिनसे इच्छा हो, उस दिनसे ब्रह्मचर्य पालन करने लगना चाहिये। जबतक इसका पालन नहीं किया जाता, तभीतक यह कठिन मालूम होता है; परन्तु एकवार दृढ़ संकल्प कर लेनेके बाद फिर कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। केवल आहार, विहार और विचारों पर उंकुश रखना होता है। मनको बेलगाम घोड़ेकी तरह छोड़ देनेसे भी हृदयमें दुर्भावोंका उदय होता है और किसी न किसी तरह ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, इसलिये इस विषयमें ब्रह्मचारीको खूब सावधान रहना चाहिये। यह काम भी नित्यके अभ्याससे सहज बनाया जा सकता है। ब्रह्मचारीको ऐसा कार्य न करना चाहिये, जिससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो। आहार विहारके सम्बन्धमें भी खूब सावधान रहना चाहिये। ऋषि मुनियोने इस सम्बन्धमें बड़े बड़े नियम बना रखे थे। वैसा करनेका एक मात्र उद्देश्य बही था, कि किसी प्रकारका भी मनोविकार ब्रह्मचारीके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हृदयमें न उत्पन्न हो। ब्रह्मचारीको यह सब बातें भली भाँति समझ रखनी चाहिये। पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रज पर उनके आहार विहारका कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह बतलाते हुए डाक्टर ट्राल लिखते हैं कि—

The more nearly the parties live in accordance with physiological habits, especially in the matters of food, clothing and exercise, the more nearly normal will be their sexual inclinations, and the less need have they of subjecting their desires to the restraints or control of reason.

अर्थात्—अपनी शारीरिक अवस्थानुसार खासकर खानपान आहार विहार तथा व्यायामके सम्यन्धमें लोग जितनाही नियमित रहते हैं, उतनाही उनकी कामेच्छा संयत रहती है और उन्हें आत्म-संयम तथा इन्द्रिय-निग्रह की कम आवश्यकता पड़ती है।

जो लोग समझदार हैं, वे स्वयं समझकर ब्रह्मचर्यके इन नियमोंका पालन कर सकते हैं, परन्तु जो नादान हैं, जिन्होंने किशोरावस्थामें अभी हालहीमें पदार्पण किया है, वे इन बातोंको नहीं समझ सकते। वीर्यपात करनेपर एक ओर अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होती है, दूसरी ओर ब्रह्मचर्य उद्धारण करने पर आहार विहार पर नियन्त्रण रखनेके कारण

-दाम्पत्य-विज्ञान-

मनःकष्ट होता है। एक ओर भोग है और दूसरी ओर त्याग। भोगका आनन्द क्षणिक भले ही हो, परन्तु तुरन्त मिलता है; त्यागका तत्काल कोई फल नहीं दिखाई देता। ऐसी दशामें नवयुवकोंका भोगकी ओर मुड़ जाना स्वाभाविक ही है। उन्हें उस क्षणिक सुखका अन्तिम दृश्य—भयङ्कर परिणाम और उस त्यागकी महिमा कौन समझता है? अपने आप वे यह सब समझ भी कैसे सकते हैं? यह सब बतलाना, समझाना और ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन कराना, बच्चोंके माता पिता, शिक्षागुरु और हितैषियोंका ही काम है। यदि वे इसके लिये चेष्टा करें और बच्चोंके आचार विचार तथा आहार विहार पर ध्यान रखें, तो वे आसानीसे ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं। अन्यथा उनकी असावधानीके कारण बच्चे अस्वाभाविक उपायोंका अवलम्बन कर अपना सवंनाश कर लेते हैं। सच पूछिये, तो उनके इस कार्यके लिये माता पिता ही जिम्मेदार हैं। उनका निरीक्षण न रहने पर बच्चे किस प्रकार अत्याचार करते हैं, किस प्रकार वीर्यका अपव्यय कर अपने भावी जीवनको दुःखमय बना लेते हैं—इन्हीं सब बातोंका अब हम अगले अध्यायमें वर्णन करेंगे।



हस्त-मैथुन ।

कि शोरावस्थामें पदार्पण करते ही पुरुषोंके हृदयमें नयी नयी तरंगें उठने लगती हैं और किसी विलक्षण आकर्षण शक्ति द्वारा उनके हृदय स्त्रियोंकी ओर आकर्षित होने लगते हैं उस समय वे सांसारिक सुख भोग करनेके लिये इस तरह व्याकुल हो उठते हैं, कि उन्हें किसी तरह कल नहीं पड़ती। उनका हृदय अशान्त और चित्त चंचल बना रहता है। उस समय जिन बच्चों पर माता पिताका कठिन नियन्त्रण रहता है, अथवा जो सम-भदार होते हैं, वह आत्म-संयम कर वीर्य-रक्षा करते हैं, परन्तु यह बात बहुत कम दिखाई देती है। बहुधा हमारे देशके नवयुवक उस समय, अविवाहित होनेके कारण, अस्वाभाविक उपायोंका अवलम्बन कर

स ६

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अपने व्याकुल हृदयको शान्त करते हैं। अस्वाभाविक उपायोंमें पुं-मैथुन और हस्त-मैथुन इन्हीं दोनोंका अधिक प्रचार है।

पुं मैथुनका व्यसन बड़ी अवस्थाके मनुष्योंमें भी पाया जाता है। सरकारकी ओरसे इसके लिये दण्ड देनेका बिधान अवश्य है, परन्तु उसमें इस निन्द्य व्यापारको निर्मूल करनेका सामर्थ्य नहीं। भारतके कुछ शहरोंमें इसका घटुत प्रचार है। वहाँ पढ़े लिखे और भले घरके समझदार मनुष्य भी इस दुर्व्यसनमें लिप्त पाये जाते हैं। ऐसे मनुष्योंको समझाना बुझाना और उपदेश देना व्यर्थ है। समझाना उसीको चाहिये, जो समझता न हो। जो जान बूझ कर गढ़ेमें गिरता हो, उसे मूर्ख समझ कर “भाग्य भरोसे” छोड़ देना ही उचित है।

किशोरावस्थाके लड़कोंमें जितना हस्त-मैथुनका प्रचार है उतना पुं-मैथुनका प्रचार नहीं देखा जाता। इसका प्रधान कारण यह है, कि इस कार्यके लिये जितना साहस और दृढ़ता चाहिये, उतने साहस और दृढ़ताका उस अवस्थाके बच्चोंमें अभाव होता है। जो लड़के बड़े साहसी और उपद्रवी होते हैं; वे ही इस दिशामें अग्रसर होते हैं। शेष सब हस्त-मैथुन द्वारा अपनी कामाग्निको शान्त करने

-दम्पत्य-विज्ञान-

चेष्टा करते हैं । इसीको हमने किशोरावस्थाके अत्याचारके नामसे सम्बोधित किया है ।

पन्द्रह या सोलह वर्षकी अवस्थामें, जिस समय शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है, उस समय स्त्री और पुरुषोंकी जननेन्द्रियाँ विकसित होने लगती हैं । उस समय दोनोंके शरीर और मनमें युगान्तर उपस्थित हो जाता है । काम-वासना इतनी तीव्र हो उठती है, कि लोगोंका हृदय एक बार ही अशान्त हो जाता है । विषय भोगके विचार मात्रसे गुप्तेन्द्रिय उत्तेजित हो उठती है और स्पर्शसे एक प्रकारका अनिर्वचनीय सुख अनुभव होने लगता है । ज्यों ज्यों आनन्द आता जाता है, त्यों त्यों लोग उसे अधिकाधिक हिलाने डुलाने लगते हैं । यहाँतक, कि इस परिचालनके कारण अन्तमें वीर्यपात हो जाता है । वीर्यपात हो जानेपर कामाग्नि शान्त हो जाती है । लोग समझते हैं, कि हमने प्रकृत आनन्द प्राप्त किया, किन्तु वास्तवमें यहींसे उनकी अधोगतिका आरम्भ होता है । शनैः शनैः इसी प्रक्रियाके कारण उनका भावी जीवन दुःखमय हो जाता है ।

नोच प्रकृतिके नौकर चाकर और बदमाश लड़के अनेक प्रकारसे अबोध बालकोंको इस विषयकी शिक्षा देते हैं । उस समय विचार शक्तिकी न्यूनता और जोशकी अधिकता

-दाम्पत्य-विज्ञान-

रहती है, अतः लड़कोंको बहुत जल्दी यह आदत लग जाती हैं। वे समझते हैं, कि हस्त द्वारा इन्द्रिय परिचालन करनेसे स्त्री-संयोगके समान आनन्दकी प्राप्ति होती है। उन्हें इस बातका विचार तक नहीं आता, कि इस कार्य द्वारा हम अपना सर्वनाश कर रहे हैं और स्वेच्छापूर्वक मृत्यु-मुखमें पतित होने जा रहे हैं। उन्हें इस बातका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं रहता, कि इस बुरी आदतके कारण हमारा दाम्पत्य-जीवन कितना नीरस और कितना दुःखमय हो जायगा। उन्हें यह सब बातें उसी समय सूझ पड़ती है, जब वे अपनी सारी शक्तियाँ खो बैठते हैं, शरीर अनेक रोगोंका घर बन जाता है और काल उन्हें कवलित करनेके लिये त्वरित गतिसे अग्रसर होने लगता है।

नवयुवकोंको इन उपायोंका अवलम्बन करनेमें बड़ीही सुविधा रहती है। उन्हें इसके लिये किसीका सहारा नहीं खोजना पड़ता। आवश्यकता केवल एकान्तकी पड़ती है और वह उन्हें आसानीसे मिल भी जाता है। किसीसे कुछ कहना सुनना नहीं पड़ता। एकान्त रहनेके कारण किसीके देखने सुनने या किसी तरहकी निन्दा होनेका भय भी नहीं रहता। इन्हीं सब सुविधाओंके कारण अबोध बालक—भावी प्रजाके भाग्य विधाता—इस दुर्व्यसनमें लिप्त हो जाते हैं।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पहले पहल जब कोई युवक इस व्याधिका शिकार होता है, तब उसे बड़ाही आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियोंकी चञ्चलताके कारण उसका जो चित्त व्याकुल हो उठता था; वह कुछ देरके लिये शान्त हो जाता है। जिस काम-वासनाको चरितार्थ करनेके लिये वह लालायित रहता था, जिस सुखको प्राप्त करनेके लिये वह सदैव व्यग्र बना रहता था, वह उसे अनायास ही प्राप्त होने लगता है। उसे न मालूम था, कि अपने ही शरीर द्वारा इतनी आसानीके साथ ऐसा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। अब वह बारम्बार वैसाही सुख प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हो उठता है और जब जब एकान्त तथा अवसर मिलता है, वह उसें अवश्य प्राप्त करता है। जब तक वह अपने हृदयका यह हौसला पूरा नहीं करता, तब तक उसके हृदयपर एक बोझ सा लदा रहता है, जब क्रिया-निवृत्ति हो जाती है, तब उसका हृदय शान्त हो जाता है। ज्यों ज्यों वह इन्द्रिय-परिचालन करता है, त्यों त्यों वह समझता है, कि इससे बढ़कर सुलभ आनन्द संसारमें और है ही नहीं। इस उपायको खोज निकालनेके कारण वह मन ही मन अपनेको धन्यवाद भी देता है। इन्द्रिय परिचालनके बाद वीर्यपात होनेपर उसकी इन्द्रियोंका वेग घट जाता है, शरीर शिथिल

रहती है, अतः — **सुख-विज्ञान-**

हैं। रोना है और आँखें झप जाती हैं। चुपचाप पड़ रहनेकी इच्छा होती है। थकावट दूर हो जाने पर पुनः वही विचार उत्पन्न होते हैं और मन इधर उधर भटकने लगता है। रात दिन दिमागमें यही बातें घूमा करती हैं। फलतः एकान्त मिलने पर पुनः इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठती हैं और वह पुनः उन्हें उसी उपायसे शान्त करता है।

और रोगोंकी तरह इस अत्याचारका फल हाथोहाथ नहीं मिलता, इसलिये अभागे युवक समझते हैं, कि हम वास्तविक सुख भोग रहे हैं। उनका यह निन्द्य व्यापार एकान्तमें होता है, अतः कोई हाथ पकड़ने वाला भी नहीं मिलता। किसीको कुछ मालूम नहीं होता, अतः कोई यह भी नहीं कहता, कि यह क्या कर रहे हो? कुछ दिनों तक यह काम बराबर चला जाता है और किसीको कुछ हाल मालूम नहीं होता। जबतक शरीरमें शक्ति रहती है, तबतक जोश आता है और उसे वह इस अस्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा शान्त करता है। उस समय उसके दुष्परिणामकी ओर उसका ध्यान भी नहीं आकर्षित होता। न समूचे शरीरमें एक साथ निर्बलता ही मालूम होती है, न कोई परिवर्तन ही, अतः वह बिलकुल निश्चिन्त रहता है,

-दाम्पत्य- विज्ञान-

परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद इसका भयंकर दुष्परिणाम भीषण रूपमें उसे दृष्टिगोचर होने लगता है ।

इस दुर्व्यसनका प्रभाव सर्व प्रथम मानसिक शक्ति पर पड़ता है । रोगीकी स्मरण शक्ति क्षीण होने लगती है और नेत्रोंकी ज्योति मन्द पड़ जाती है । शरीर और मन दोनोंमें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । अतः शारीरिक निर्वलता बढ़ने पर मानसिक निर्वलता बढ़ना स्वाभाविक है । स्मरण शक्तिके साथ ही साथ विचार शक्तिका भी लोप हो जाता है और इसी प्रकार शनैः शनैः सर्वनाश हो जानेपर लोगोंको ज्ञान होता है, कि हमने कैसी भयंकर भूल की है । उस समय वे हाथ मलमल कर पछताने लगते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता ।

हस्तदोष किंवा हस्त मैथुनमें सबसे अधिक बुरी बात यह है, कि जिसे एकबार यह दुर्व्यसन लग जाता है, वह सर्वनाश हो जानेके पहले शायद ही इससे मुक्त होता है । वीर्यके इस अपव्ययसे शक्तिका ह्रास होता है, अतः शरीरकी वृद्धि रुक जाती है और इन्द्रियोंका यथेष्ट विकास नहीं हो पाता । यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है, कि प्रकृत स्त्री-संयोगसे जो नैसर्गिक आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्दका शतांश भी इस अस्वाभाविक गमनसे नहीं प्राप्त होता ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

साथ ही वैज्ञानिकोंका कथन है, कि प्रकृत संयोगसे जो शारीरिक शक्ति क्षीण होती है, वह पारस्परिक संघर्षणसे बहुत कुछ पुनः प्राप्त हो जाती है, परन्तु इस प्रक्रियामें वैसा नहीं होता। जब तक जोश रहता है, तबतक लोग यह कार्य करते हैं। जोश ठंडा हो जानेके बाद उन्हें थका-वट, चिन्ता और पश्चात्ताप धर दबोचता है। इससे उन्हें दुगुनी हानि होती है। वैज्ञानिकोंका यह भी कथन है, कि प्रकृत संयोगकी अपेक्षा इसमें बीस गुनी अधिक शक्ति क्षय होती है। अर्थात् बीस बार स्त्री-संयोग करने पर शरीरको जितनी हानि उठानी पड़ती है, उतनी हानि हस्तमैथुनमें एक ही बारमें उठानी पड़ती है। इसीसे इस व्याधिके शिकार देखते ही देखते बृद्ध हो जाते हैं और जवानी चार दिनकी चाँदनीकी तरह उनका साथ दे, अपना रास्ता लेती है।

जो लोग अपनी अज्ञानताके कारण इस दुर्व्यसनके फेर-में पड़ जाते हैं, वे फिर सहजमें इसके बन्धनसे मुक्ति नहीं पाते। फल यह होता है, कि कुछ दिनोंके बाद जब यौवनमें दाम्पत्य-जीवनका प्रकृत सुख उपभोग करनेका समय आता है, तब उन्हें प्रकृत आनन्दका अनुभव नहीं मिलता। वे अपना शारीरिक सामर्थ्य खो बैठते हैं, अतः इच्छा करने पर भी कोई काम नहीं कर पाते। उनमें पत्नीव्रत पालन

-दाम्पत्य- विज्ञान-

करनेका सामर्थ्य नहीं रहता। अतः उन्हें स्त्रीको मुंह दिखाते शर्म मालूम होती है। इस शोचनीय अवस्थामें उन्हें आत्म-घात कर जीवनका अन्त लानेकी इच्छा होती है, परन्तु आत्मघात करना भी कोई आसान बात नहीं है। उसके लिये भी कुछ आत्मबल और साहस चाहिये। इन दोनोंका उनके हृदयमें पहलेसे ही अभाव रहता है, अतः वे प्राण-विसर्जन भी नहीं कर सकते। उन्हें आजीवन वृद्धावस्थाके असह्य कष्ट भोगने पड़ते हैं और अन्तमें पश्चात्ताप करते हुए बड़े दुःखके साथ अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करना पड़ती है।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि भुक्त अन्नसे प्रायः एक मासमें वीर्य बनता है। वीर्यका एक बिन्दु खूनके चालीस बिन्दुओंके बराबर होता है। जैसे मन्थन करने पर दूधसे मक्खन निकलता है; वैसे ही रक्तके मन्थनसे वीर्य प्रस्तुत होता है। इसीलिये वीर्य शरीरका सत्व माना गया है। अपव्यय करनेसे ज्यों ज्यों वह घटता है, त्यों त्यों मनुष्य निःसत्व, निस्तेज और शक्तिहीन हो जाता है।

जो लोग किशोरावस्थामें यह अत्याचार करते हैं, उन्हें युवावस्थाके प्रकृत सुखोंसे वञ्चित रहना पड़ता है। कभी कभी यह आदत ऐसी जड़ जमा लेती है, कि इसके दुष्परिणामोंका ज्ञान हो जानेपर भी मनुष्य अपने मन पर

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अंकुश नहीं रख सकता और उसे अनिच्छापूर्वक भी यह प्रक्रिया करनी पड़ती है। इस व्यसनके दुष्परिणामका ज्ञान होनेपर लोग मुक्तिलाभ करनेके विचारसे स्त्री-संयोगमें प्रवृत्त होते हैं, परन्तु पुरुषत्वका लोप हो जानेके कारण उन्हें उलटा लज्जित होना पड़ता है। संसारमें इससे बढ़कर हीन और दयाजनक अवस्था दूसरी और कौन हो सकती है? हमारे देशके अधिकांश युवकोंका यही हाल होता है और इसीलिये उनका दाम्पत्य-जीवन आनन्दसे नहीं व्यतीत होता। इस अत्याचारके कारण मनुष्य किस तरह रोगी हो जाता है, शनैः शनैः कौन लक्षण प्रकट होते हैं—इन्हीं सब बातोंका अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। माता पिताओंको चाहिये, कि अपने बच्चोंमें इन लक्षणोंके देखते ही सावधान हो जायें और उनकी प्रवृत्तियों पर कठिन नियन्त्रण रख, उनके भावी जीवनको इस प्रकार नष्ट हो जानेसे बचायें।

हस्त दोषके रोगीका शरीर क्षीण हो जाता है। हाथ, पैर और पोठमें पीड़ा होती है। मन सदा उदास और खिन्न रहता है। स्वभाव चिड़चिड़ा और संशयशील हो जाता है। बात बातमें दूसरोंसे झगड़नेकी आदत पड़ जाती है। मूत्र किंवा मल विसर्जनके समय वीर्य मिश्रित

-दाम्पत्य-विज्ञान-

एक प्रकारका सफेद पदार्थ निर्गत होने लगता है। पेटमें बहुधा कब्जियत बनी रहती है। स्मरण-शक्ति कम हो जाती है। शरीरमें स्फूर्तिके बदले सुस्ती आ जाती है। जरासा परिश्रम करते ही सांस फूलने लगती है। अश्लील पुस्तकें पढ़नेकी इच्छा होती है। एकान्त पसन्द पड़ता है। आदत न छूटने पर रोगी मृत्युकी कामना करता है।

रून और नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है। हृदयकी कोई बीमारी हो जाती है। दिमागकी नसें कमजोर पड़ जानेके कारण कोई मस्तिष्क रोग हो जाता है। क्षय और जीर्णज्वरकी बीमारियाँ बहुधा इसीके कारण हुआ करती हैं। कभी कभी भगन्दर आदि भयंकर बीमारियाँ भी हो जाती हैं। किसी किसीका बेतरह सिर दुखा करता है। और उसके कारण किसी काममें जी नहीं लगता।

जननेन्द्रिय बारंबार उत्तेजित होनेके कारण नसें कमजोर पड़ जाती हैं। उसका अग्रभाग शीतल बना रहता है। पुरुषत्वका लोप हो जानेके कारण मनुष्य किसी कामका नहीं रहता। स्त्री संयोगके समय जननेन्द्रिय उत्तेजित होनेके बाद कुछ ही देरमें शिथिल हो जाती है। उत्तेजित अवस्थामें भी कृशता बनी रहती है। कुछ दिनोंतक यह स्थिति रहनेके बाद मनुष्य सदाके लिये नपुंसक हो जाता

- दाम्पत्य-विज्ञान -

है। शक्ति न होनेपर भी किसी किसीको विषय करनेकी इच्छा होती है और किसी किसीकी इच्छा शक्ति ही नष्ट हो जाती है। दोनों वृषण नीचेको लटक पड़ते हैं। बायां वृषण अपेक्षा कृत अधिक बड़ा हो जाता है। वृषण और उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियोंमें वेदना होने लगती है। बेशाब बारम्बार करना पड़ता है। पेशाबकी धार टेढ़ी निकलती है और उसका रंग बहुधा पीलापन लिये रहता है। कभी कभी वृषण बिल्कुल छोटे हो जाते हैं। पेशाब करनेके बाद गुदाके निकट मूत्रनालीमें तीक्ष्ण पीड़ा होती है। किसी किसीकी उत्पादक इन्द्रिय इतनी निर्बल हो जाती है, कि जरासी उत्तेजना होते ही या दस्तके समय जोर करते ही वीर्य निकल पड़ता है।

रोगीको अच्छी तरहसे निद्रा नहीं आती। मतवालेकी तरह पड़े रहनेकी इच्छा होती है। सोकर या बैठकर उठने पर आंखोंके सामने अन्धेरा छा जाता है। शरीरमें ऐंठन और पीड़ा होती है। किसी किसीको हलका बुखार आने लगता है और शामको शरीर अधिक गरम हो जाता है। गला बैठ जाता है और शब्द खोखरा हो जाता हैं। हाथ पैर ठंढे बने रहते हैं। कमजोरीके कारण पैर लड़खड़ाने लगते हैं और बालोंमें रूखापन आ जाता है।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

भोजनकी रुचि घट जाती है। अन्न ठीक ठीक न पचनेके कारण शरीर दुर्बल हो जाता है। कुछ लोग भोजन भली भाँति कर सकते हैं, परन्तु वह उनके शरीरमें नहीं लगता। पाचन शक्ति खराब हो जानेके कारण कमजोरी बढ़ती जाती है। दस्त ठीक समय पर नियमित रूपसे नहीं होता और उसके रङ्ग रूपमें अन्तर पड़ा करता है। अन्तमें खांसी और खांसीसे क्षयकी बीमारी हो जाती है। दस्त पतले आने लगते हैं और रोगीका बचना असम्भव हो जाता है।

यह रोग अपनी चरम सीमामें पहुँच जाने पर फिर छिप नहीं सकता। रोगीका चेहरा देखते ही सारा हाल मालूम हो जाता है। जवानीमें जो तन्दुरुस्ती और लाली होनी चाहिये, वह न जाने कहां चली जाती है। चेहरा पतला और पीला पड़ जाता है। आँखोंकी रोशनी घट जाती है। होठोंकी अरुणता उड़ जाती है। दांतोंकी सफेदी कम हो जाती है। बाल भर जाते हैं और जवानीमें ही बुढ़ापेकी सी हालत हो जाती है। रोगीका स्वभाव इतना संकोचशील हो जाता है, कि उसके चेहरे पर हमेशा शर्मसी छाई रहती है। आँखें उठा कर बात करना उसे कठिन हो जाता है। आँखोंके नीचे श्यामता आ जाती है।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

मन और मस्तिष्ककी दशा बिल्कुल बदल जाती है और “शरीरं व्याधि मन्दिरम्” हो जाता है ।

उपरोक्त लक्षणों द्वारा हस्तदोषका रोगी आसानीसे पहचाना जा सकता है । यद्यपि अति मात्रामें स्त्री-प्रसंग करनेसे भी यह लक्षण प्रकट होते हैं, परन्तु स्त्री-संगकी अपेक्षा हस्त मैथुनके दोषमें उनका प्राबल्य विशेष होता है । बात यह है, कि स्त्री प्रसंग, शरीरमें जितनी शक्ति, जितना सामर्थ्य और जितना जोश होता है, उतने ही परिमाणमें किया जा सकता है, परन्तु हस्त मैथुनमें शक्ति या सामर्थ्य की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती । सामर्थ्य चाहे जितना कम हो, शक्ति चाहे जितनी क्षीण हो, तब भी यह काम हो सकता है । इन्द्रिय परिचालन करने पर वीर्य जुटानेका काम वृषणों पर पड़ता है । वे भी इस घृणित कर्मके कारण दुर्बल हो जाते हैं अतः पतला और परिपक्व न मिला तो अपरिपक्व ही वीर्य जुटा देते हैं और जननेन्द्रिय भलो भांति उत्तेजित होनेके पूर्व ही उसे निकाल बाहर करती है । इसीलिये जब स्त्री संग करनेकी चेष्टा की जाती है, तब सफलता नहीं मिलती और किसी तरह मिलती है तो स्वस्थ मनुष्यकी तरह नैसर्गिक आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती ।

जो लोग यह समझते हों, कि स्त्री संग और हस्त-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

मैथुन दोनोंमें समान रूपसे वीर्य नष्ट होता है, अतः दोनोंमें कोई अन्तर नहीं—वे भयंकर भूल करते हैं। उन्हें यह बात भली भांति समझ रखनी चाहिये, कि स्त्री-संग और हस्तमैथुनमें जमीन आसमानका अन्तर है। स्त्रीसंगकी अपेक्षा हस्त मैथुन द्वारा शारीरिक हानि विशेष परिमाणमें क्यों होती है, यह समझनेके लिये पाठकोंको निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना चाहिये।

(१) स्त्री संयोग पराधीन होनेके कारण अवसर मिलने ही पर हो सकता है, परन्तु हस्त क्रियाका कार्य स्वेच्छा पर निर्भर होनेके कारण जब चाहे तब और जितनी बार चाहे उतनी बार हो सकता है। अतः वीर्य अधिक परिमाणमें नष्ट होता है।

(२) स्त्री-संयोगके समय दृढ़ और उत्तेजित अंगकी आवश्यकता पड़ती है, अतः यह कार्य शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ही किया जा सकता है, परन्तु हस्त मैथुन इन्द्रिय शिथिल होने पर भी किया जा सकता है, अतः लोग अपेक्षा कृत अधिक वीर्य नष्ट करते हैं।

(३) स्त्री संयोगके समय स्पर्श, शब्द, दर्शन आदि अनेक कार्योंमें इन्द्रियां संलग्न रहती है, अतः किसी एक अङ्ग पर सीमातीत परिश्रम-भार नहीं पड़ता, परन्तु हस्त

- दाम्पत्य- विज्ञान -

मैथुनमें केवल एक ही प्रक्रिया होती है, अतः मस्तिष्क और शरीरको अपेक्षा कृत अधिक हानि उठानी पड़ती है ।

(४) स्त्री संयोगके समय ज्ञानतन्तु नैसर्गिक उत्तेजनासे आपोआप उत्तेजित होते हैं और मैथुन क्रियाका वेग शनैः शनैः वृद्धिगत होता है, परन्तु हस्त मैथुनमें स्वाभाविक उत्तेजनाका अभाव होता है अतः उसे उत्पन्न करनेके लिये मनको बड़ा परिश्रम करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त यह कार्य बड़े वेगसे सम्पन्न होता है अतः शरीरको इतना थका पहुँचता है, कि क्रिया-समाप्ति होनेपर वह एकदम शिथिल और सत्वहीन सा हो जाता है ।

(५) स्त्री और पुरुषके प्रकृत समागममें इन्द्रियोंके पारस्परिक घर्षणसे एक प्रकारकी बिजली पैदा होती है । वैज्ञानिकोंका कथन है, कि उस बिजलीके कारण न केवल आनन्दकी ही प्राप्ति होती है, बल्कि स्त्री और पुरुषोंकी खोई हुई शक्तिका अधिकांश भी उससे पूरा हो जाता है । हस्त मैथुनमें इस विद्युत् का प्रादुर्भाव नहीं होता, अतः शारीरिक हानि तो होती ही है, साथ ही उसकी पूर्ति भी नहीं होती ।

अब हमारे पाठक सोच सकते हैं, कि विवाह होनेके पूर्व ही जिसने इस प्रकार अत्याचार कर अपती जीवनी-शक्ति खो दी हो, वह दाम्पत्य-जीवनका स्वर्गीय सुख कैसे

- दाम्पत्य- विज्ञान -

भोग सकता है ? जिसने इस प्रकार अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर आत्महनन कर लिया हो, वह सुखकी आशा कैसे रख सकता है ? इसीलिये हम कहते हैं, कि दाम्पत्य-जीवन सुखमय बनानेके लिये पहलेसे ही तैयारी करनी चाहिये । जो बिना विचार किये ही इस कुकर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वह आप ही आप अपना भावी जीवन दुःखमय बना लेते हैं ।

इस दुर्ग्यसनमें लिप्त होनेवाले अवोध बालकोंमेंसे बहुत थोड़ोंको आरम्भमें इस बातका ज्ञान होता है, कि हम यह अनुचित कार्य कर रहे हैं; परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद जब उनकी शक्ति क्षीण होने लगती है; तब उनको इस बातका ज्ञान अवश्य हो जाता है; कि हम भयंकर भूल कर रहे हैं । परन्तु दुर्भाग्यवश यह बुरी आदत उस समय उन्हें इस तरह अपने चंगुलमें फंसाये रहती है, कि वे इच्छा करने पर भी उसे छोड़ नहीं सकते । माता पिता इस ओर ध्यान ही नहीं देते । वे तो लड़केकी उम्र—दिन और मास ही गिननेमें व्यस्त रहते हैं । समझते हैं, कि हमारा लड़का बड़ा हो रहा है, रेख फूट रही है, वह जवान हो रहा है, व्याहने लायक हुआ, परन्तु वस्तुस्थिति कुछ और ही होती है । लड़का नित्य ही वृद्धावस्था और मृत्युकी ओर अग्र-

-दाम्पत्य- विज्ञान-

सर होता जाता है और कुछ दिनके बाद अपनी व्याख्या करनेकी योग्यता भी खो बैठता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अधिकांश लड़के इस बुरी आदतमें फँसे रहते हैं । माता पिताओंको चाहिये, कि उनकी स्थिति, उनका चालचलन और स्वास्थ्य पर भली भाँति नजर रखें । यदि उनके गालोंकी सुर्खी उड़ जाय, चेहरा पीला पड़ जाय और उपरोक्त लक्षण दृष्टिगोचर हों तो समझ लें, कि वह अवश्य अपना सर्वनाश कर रहा है । उन्हें चाहिये, कि वे स्वयं उन्हें एकान्तमें उपदेश द और उन्हें समझा दें, कि यह अपने ही हाथों अपनेपैरपर कुल्हाड़ी मारना है । यदि उन्हें यह काम करते संकोच मालूम हो, तो अपने किसी मित्रसे करावें और यदि यह भी न कर सकें, तो उन्हें निःसंकोच भावसे इस विषयकी पुस्तकें पढ़नेको दें । हम इस बातका विश्वास दिलाते हैं; कि उन्हें इससे सिवा लाभके किसी प्रकारकी हानि न होगी । *

* हमारे साहित्यमें बच्चोंके हाथमें देने योग्य इस विषयकी पुस्तकोंका बड़ा अभाव है । हमने इस अभावको दूर करनेके लिये 'सृष्टि-विज्ञान' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की है । यह बच्चोंके हाथमें निःसंकोच दी जा सकती है ।



वीर्य-स्राव

हस्तमैथुनके अतिरिक्त वीर्यस्राव भी एक ऐसी व्याधि है, जो दाम्पत्य जीवनमें पदार्पण करनेके पहलेही मनुष्यका जीवन दुःखमय बना देती है। यद्यपि यह रोग विवाह हो जानेके बाद भी होता है और बहुत लोग आजीवन इसके पंजेसे मुक्त नहीं होते, तथापि जो लोग हस्तमैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, और जो लोग अपने मनको व्यर्थ इधर उधर दौड़ाया करते हैं, वे बहुत जल्दी इस रोगसे ग्रसित हो जाते हैं और उनका दाम्पत्य-जीवन नीरस एवम् दुःखमय हो जाता है।

चिकित्सा-शास्त्रका कथन है, कि शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्यके परिमाणमें बाल्यावस्थासे युवावस्था तक शनैः शनैः वीर्य उत्पन्न होता है और शरीरमें संचित हुआ

-दाम्पत्य-विज्ञान-

करता है। मनुष्य जबतक किसी प्रकारके दुर्गुणोंमें प्रवृत्त नहीं होता, तबतक उसका वीर्य निर्दोष रहता है, अतः शारीरिक स्वास्थ्यमें भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती, परन्तु किसी शारीरिक या मानसिक अत्याचारके कारण जब वीर्य दूषित हो जाता है और उसे धारण करनेवाली नसें निर्बल हो जाती हैं, तब वीर्यस्रावकी व्याधि मनुष्यपर आक्रमण करती है और उसके जीवनको दुःखमय बना देती है। जो लोग पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हैं और वीर्य परिपक्व होनेके पहले किसी प्रकारका अत्याचार नहीं करते, वे इस रोगसे सदैव बचे रहते हैं।

वास्तवमें वीर्यस्राव बड़ा घृणित रोग है। बिना किसी आवश्यकताके अनियमित रूपसे वीर्यस्राव होते देखकर लोगों को चिन्ता होने लगती है और वह होना आवश्यक ही है, परन्तु संसारमें बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे होंगे जो इस व्याधिसे मुक्त हों। कोई किसी कारणसे इसका शिकार होता है तो कोई किसी कारणसे। नवयुवकगण इसकी शिकायत विशेष रूपसे करते हैं। उनके लिये अब यह रोग साधारण सा होगया है। कुपथगामी और मनचले युवक, जो प्रकृतिके नियमोंको अतिक्रमण करनेमें यत्किञ्चित् भी संकोच नहीं करते, वे आसानीसे इस रोगके शिकार होते हैं। उनके

-दास्य-विज्ञान-

शारीरिक या मानसिक अत्याचारक कारण वीर्यवाहिनी नसें कमजोर हो जाती हैं। कुछ दिन यही हाल रहनेपर वीर्य पतला पड़ जाता है और उसके प्रकृत गुण नष्ट हो जाते हैं। एक बार बुरी आदत लग जानेपर बादको छोड़ देने पर भी स्नायु इतने निर्वल हो जाते हैं, कि वे भलेचंगे वीर्यको भी धारण नहीं कर सकते। वीर्योत्पादक अंग और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली समस्त इन्द्रियां एकाएक उत्तेजित हो उठती हैं और वीर्यको बाहर निकाल देती हैं।

यह रोग बहुधा हस्तदोषके कारण होता है। बाल्यावस्थामें खोगमन करना, व्यभिचार करना, विषयासक्त रहना, चित्तको चंचल बनानेवाली बातोंको हृदयमें स्थान देना, बुरे विचार करना और कामेच्छाको उत्तेजित करनेवाली पुस्तकोंका पढ़ना—यह सभी बातें इस रोगको जन्म देती हैं। कभी-कभी किसी दूसरे रोगके कारण भी यह रोग हो जाया करता है। पेटमें कब्जयत रहने अथवा मल सूख जानेसे वीर्यवाहिनी नसोंपर जोर पड़ता है अतः वे उत्तेजित हो उठती हैं। इसके अतिरिक्त वृषण सम्बन्धी व्याधिके कारण भी यह रोग हो जाता है। चिकित्सा-शास्त्रमें ऐसे ऐसे अनेक कारणोंका वर्णन है, परन्तु इस व्याधिका प्रधान कारण चित्तकी चञ्चलताही है। जो लोग रात दिन विषय सम्बन्धी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

विचार किया करते हैं, कामवासनाको अपने हृदयमें स्थान दिये रहते हैं या किसी प्रेमिकाका स्मरण किया करते हैं, वही लोग बहुधा इसके शिकार होते हैं। यदि उस समय वे अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत कर सकें, अपनी कामवासनाको चरितार्थ कर सकें और अपनी प्रेम-पात्रीको हृदयसे लगा सकें, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वे इस व्याधिसे बच सकते हैं। परन्तु हृदयमें जब दुर्वासना उत्पन्न होती है और कुविचार डेरा डालते हैं, किन्तु उन्हें कार्यरूपमें परिणत होनेका सुयोग नहीं मिलता, तब मनुष्य इस रोगसे ग्रसित हो जाता है।

इस रोगकी तीन अवस्थाय होती हैं। पहली अवस्थामें स्वप्नदोष होता है। कुछ दिनोंके बाद दूसरी अवस्थाका आरम्भ होता है। उस अवस्थामें स्वप्नदोष बन्द हो जाता है और पेशाबमें वीर्य जाने लगता है। यदि यही दशा अधिक समय तक चलती रही और कोई उपचार न किया गया, तो अन्तमें तीसरी अवस्था दृष्टिगोचर होती है। उस अवस्थामें मनुष्य नपुंसक हो जाता है।

उपरोक्त तीन अवस्थाओंमें पहली अवस्थाको जाननेमें लेश भी कठिनाई नहीं पड़ती। रोगीको स्वप्नदोष होते ही अपने रोगका ज्ञान होता है। रात्रिके समय स्वप्नमें कोई

-दाम्पत्य- विज्ञान-

स्त्री दिखाई देती है और उसी काल्पनिक स्त्रीके साथ संग करनेपर वीर्यपात होता है। इसीको लोग स्वप्नदोष कहते हैं। स्वप्नदोष होनेपर शरीरमें थकावट, निर्वलता और शिथिलता मालूम होती है। रोगीका चित्त सदैव चञ्चल बना रहता है। शरीर शीतल बना रहता है। पढ़ने लिखने और काम करनेके समय आलस्य आता है। सोचने समझने और विचार करनेकी शक्ति कम हो जाती है। स्मरण शक्तिका लोप हो जाता है। लोगोंसे दूर रहनेकी इच्छा होती है। एकान्तवास रुचिकर प्रतीत होता है। चित्त भयभीत और लज्जित सा बना रहता है। अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं रहता। माथा भारी रहता है और दुखा करता है। चक्कर भी आता है। पसली, पीठ और कमरमें दर्द होता है। वृषण नीचेको लटक पड़ते हैं और जननेन्द्रियका मुख शीतल बना रहता है। किसी किसीकी जननेन्द्रिय बारम्बार उत्तेजित हो कुछ ही देरमें शान्त हो जाया करतो है। इस रोगके कारण कोई कोई उन्मत्त भी हो जाते हैं। मस्तिष्क पर इस व्याधिका विशेष रूपसे प्रभाव पड़ता है। आरम्भमें ही औषधोपचार करनेसे रोग निर्मूल हो जाता है, परन्तु उसकी उपेक्षा करनेपर शनैः शनैः दूसरी अवस्थाका आरम्भ होता है।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

दूसरी अवस्थामें मल और मूत्र विसर्जनके समय वीर्य-स्त्राव होने लगता है। पहले स्वप्नदोष बन्द हो जाता है अतः रोगी अपनेको धन्य समझने लगता है। वह विचारा यह नहीं समझ सकता, कि मेरे शरीरमें उससे अधिक प्रबल और भयंकर व्याधिने प्रवेश किया। बहुधा वीर्य मूत्रके साथ मिला रहता है, अतः साधारण वैद्य भी इस रोगका निदान नहीं कर सकते। बारम्बार वीर्यस्त्राव होनेके कारण नसें इतनी कमजोर हो जाती हैं, कि उनकी वीर्य-धारणकी शक्ति ही लोप हो जाती है। अतः जो वीर्य संचित होता है, वह बिना किसी उत्तेजनाके ही निर्गत हो जाता है। पहली अवस्थाका तो रोगीको ज्ञान भी रहता है, परन्तु दूसरी अवस्था इस तरह गुप्त रीतिसे आरम्भ होती है, कि रोगी जबतक नपुंसक नहीं हो जाता, तबतक उसे इस बातका विचार ही नहीं आता, कि मैं रोगी हूँ। अब न रात्रिमें स्वप्न आते हैं, न चित्त चञ्चल होता है, न किसी प्रकारका सुख ही मिलता है। केवल दिनमें मल और मूत्र विसर्जनके समय वीर्यपात होता है। रोगी इस बातको समझ नहीं सकता, अतः दिन प्रतिदिन अपने शरीरको क्षीण होते देख, उसे चिन्ता होने लगती है। यदि उस समय ध्यानसे देखे तो उसे मालूम हो सकता है, कि पेशाबका अन्तिम

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अंश और खासकर अंतके तीन चार बुंद कुछ चिकने, गाढ़े और सफेद उतरते हैं। कुछ दिनोंके बाद वीर्य धारणकी समूची शक्ति लोप हो जाती है, अतः बारम्बार वीर्यस्राव होने लगता है।

दूसरी अवस्था अधिक समय तक रहने पर तीसरी अवस्थाका आरम्भ होता है। इस अवस्थामें जननेन्द्रिय निस्तेज हो जाती है। इसीको लोग नपुंसकता कहते हैं। इस अवस्थामें स्त्री-गमन करनेकी इच्छा और शक्तिका नाश हो जाता है। कभी कभी कुछ शक्ति रहते ही इच्छाका नाश हो जाता है और कभी कभी शक्ति न होनेपर भी कुछ समयतक इच्छा बनी रहती है। किसीकी पहले इच्छा और बादको शक्ति नष्ट होती है और किसीकी पहले शक्ति और उसके बाद इच्छाका नाश होता है। युवावस्थामें इससे अधिक दुःखकी बात और हो ही क्या सकती है ?

युवावस्था मनुष्यके शरीरमें वसंत कालके समान है। उस समय उसकी सुन्दर मूर्ति देख सभीका चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। स्त्रियाँ उस समय पुरुष पर मुग्ध हो जाती हैं और मनही मन अपना सर्वस्व उसे अर्पण करनेको प्रस्तुत रहती हैं। यदि उस समय पुरुष उपरोक्त प्रकारके अत्याचारों द्वारा अपना यौवन और स्वास्थ्य खो बैठता है, उसमें

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सहवास करनेका सामर्थ्य नहीं रहता, तो उसकी स्त्रीका हृदय सदैव दुःखित बना रहता है। स्त्रीका ही क्यों, पुरुषको भी अपनी दशा देख, दुःख होता है और सन्तापके कारण जी जला करता है। वह मन ही मन अपने कृतकर्म-के लिये पाश्चात्ताप करता है, परन्तु उससे कोई फल नहीं होता। उस समय वह कहता है, कि यदि मुझे किसीने इस बिषयकी शिक्षा दी होती, किसीने इस भयंकर फलका दिग्दर्शन कराया होता, तो आज मेरी यह दशा न होती। जिस समय स्त्री उदास चित्तसे उसके पास आ बैठती है, उस समय उसे आत्मघात तक करनेकी इच्छा होती है। शयन गृहमें पदार्पण करते समय उसके पैर कांपने लगते हैं। उसे मालूम होता है, मानों वह दाम्पत्य-धर्मके पालन की योग्यता ही नहीं रखता। अब उसे औषधोपचार करनेकी बात सूझती है, वह अखबारोंके पन्ने उलटता है, दवावालोंके सूचीपत्र मंगाकर पढ़ता है और भड़कीले विज्ञापन देख, स्वास्थ्यके ठेकेदारोंसे दो चार रुपयेकी दवा मंगा कर पुरुषत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करता है। परन्तु इससे कोई फल नहीं होता। किसी अच्छे वैद्य किंवा डाक्टर द्वारा अधिक समय तक चिकित्सा करानेपर चाहे कुछ लाभ भलेही हो जाय, बाकी अधिकांश लोगोंको निराश

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ही होना पड़ता है। ऐसे मनुष्योंको दाम्पत्य-जीवनका किञ्चित् भी आनन्द नहीं मिलता। वे अपने पापके लिये पश्चात्ताप करते ही करते मृत्युकी शान्तिमयी गोदमें चिर-कालके लिये विश्रांति ग्रहण करते हैं।

हमारे धर्म और चिकित्सा शास्त्रोंमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है, कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही स्त्री-संग करना चाहिये। ब्रह्मचारीके लिये तो वीर्यपात पातक माना ही गया है, साथ ही गृहस्थके लिये भी दोषावह कहा गया है। शास्त्रोंका कथन है, कि जो पुरुष विवाहित अवस्थामें अपनी स्त्रीके साथ केवल ऋतुकालमें ही समागम करता है, वह भी ब्रह्मचारी हैं। किसी अवस्थामें भी वीर्य पात होना उन्होंने निर्दोष नहीं कहा। चाहे जिस दशामें, चाहे जिस कारणसे वीर्यपात हो, उन्होंने उसे निन्द्य और हानिकर ही बतलाया है। यहाँ तक कि उसके लिये प्रायश्चित्त आदि करनेका भी विधान है।

परन्तु आजकल हमारी शिक्षा दीक्षा, चालचलन और स्वेच्छाचरिताके कारण यह रोग इतना साधारण हो गया है, कि अनेक डाक्टर और वैज्ञानिक इसे किसी हदतक रोग ही नहीं मानते। उनका कथन है, कि साधारण रूपसे वीर्य-स्त्राव होना शरीरके लिये हानिकर नहीं, बल्कि हितकर

- दाम्पत्य - विज्ञान -

है। जब वह निश्चित सीमाको उल्लंघन कर विषम रूप धारण करे तब उसे रोग समझना चाहिये। हम अपने पाठकों के हितार्थ उनके अभिमत उद्धृत कर यह बतलायेंगे, कि उनकी धारणा कैसी भ्रम पूर्ण है।

डॉक्टर स्टेनली हाल अपने "एडोल सन्स" नामक ग्रन्थमें लिखते हैं, कि जिस प्रकार स्त्रियोंको ऋतुस्त्राव होता है उसी प्रकार किशोरोंको वीर्यस्त्राव होना स्वाभाविक है। उनका कथन है, कि स्वप्नमें वीर्यस्त्राव होना यौवनके आगमनका सूचक है। उन्होंने तीन अविव्राहित पुरुषोंके वीर्यस्त्रावका हिसाब नोट किया था। उनके विषयमें वे लिखते हैं, कि तीनोंमेंसे एक की भी अवस्था तीस वर्षसे कम नहीं है। तीनों दृष्टपुष्ट, स्वस्थ और विद्वान् हैं। एक तो बड़ाही चतुर, सदाचारी और साधु पुरुष हैं। आठ वर्षतक उनके वीर्यस्त्रावका हिसाब रखनेपर मि० स्टेनली हालने देखा, कि औसतसे प्रत्येकको प्रति मास साढ़े तीन बार वीर्यस्त्राव होता है। जुलाई मासमें सबसे अधिक याने पाँच बार और सितम्बरमें सबसे कम दो बार वीर्यस्त्राव हुआ। अप्रैल और दिसम्बरमें घटता हुआ दिखाई दिया। वीर्यस्त्रावकी अवधि प्रायः सब पुरुषोंमें एक समान ही पायी गयी।

- दाम्पत्य- विज्ञान -

स्टेनली हालका कथन है कि जब वीर्यस्रावका परिमाण बढ़ता है तब शक्ति, पुरुषत्व और स्फूर्ति भी बढ़ती है। वीर्यस्रावकी अवधि प्रायः सब महीनोंमें समान ही रहती है। साल भरमें अधिकसे अधिक ५० बार और कमसे कम ३७ बार वीर्यस्राव हुआ। स्वास्थ्यके अनुसार बसंत और ग्रीष्ममें अधिक वीर्यस्राव होता है। वीर्यस्रावकी अवधिके सम्बन्धमें वे लिखते हैं, कि प्रतिशत ५६ बार सात या इससे कुछ कम दिनोंके अन्तरसे, ४० बार ४ दिनोंके अन्तरसे और ३५ बार आठसे लेकर सत्रह दिनोंके अन्तरसे वीर्यस्राव होता है। अधिकसे अधिक अन्तर ४२ दिनका पड़ा। उनका कथन है, कि मिताहार और परिश्रम करने तथा कम सोनेपर वीर्यस्राव अधिक दिनोंके अन्तरसे होता है। बहुधा रात्रिके पिछले पहरमें ही वीर्यस्राव होता है। सावधान रहनेपर अवधि बढ़ाई जा सकती है, परन्तु वह अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। शरीर निर्बल होनेपर तथा बारम्बार वीर्यस्राव होने पर शरीर शिथिल हो जाता है, परन्तु स्वस्थ दशामें नियमित रूपसे वीर्यस्राव होने पर आराम मिलता है। युवावस्थामें वीर्य-जन्तुओंकी उत्पत्ति अधिक परिमाणमें होती है, अतः अधिक परिमाणमें वीर्य-स्राव होना स्वाभाविक है।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अमेरिकन डाक्टर आर० आर० रसेल एम० डी० का कथन है; कि जो बारम्बार मैथुन करते हैं, उनके वीर्यमें चपल, निरोगी और प्रजोत्पादक जन्तु विशेष परिमाणमें दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु जो लोग दीर्घकाल पर्यन्त मनोनिग्रह करनेके बाद स्त्री-संग करते हैं, उनके वीर्यमें बहुत कम, गति हीन और निस्तेज जीवाणु होते हैं। इसका कारण वे यह बतलाते हैं, कि अधिक दिनोंके बाद स्त्रीसंयोग करने वालोंके वीर्यको दीर्घकाल पर्यन्त वीर्याशयमें बन्द रहना पड़ता है, अतः वीर्यके जीवाणु किंवा शुक्रकीट मर जाते हैं। इसी लिये रात्रिके समय वीर्यस्त्राव होता है। इससे वह निस्तेज वीर्य निर्गत होकर नये वीर्यके लिये स्थान खाली कर देता है। अर्थात् दीर्घकालतक वीर्य संचित रहनेपर वह खराब हो जाता है, अतः उसे निष्काश देनेके लिये वीर्यस्त्राव होना स्वाभाविक एवम् आवश्यक है।

डाक्टर एक्टन एम० आर० सी० एस० का कथन है, कि जो लोग व्यायाम नहीं करते और जिनका समय पेश आराम और आनन्दमें ही व्यतीत होता है, उनके लिये दस या पन्द्रह दिनसे वीर्यस्त्राव होना हितकर है। इससे उनके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। साथ ही वे यह भी कहते हैं, कि जो लोग मनोनिग्रह करते हैं, कुवासनाओंको अपने

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हृदयमें स्थान नहीं देते एवम् मिताहारी रहते हैं, उन्हें वीर्य-स्त्राव नहीं होता, और वीर्यस्त्रावका न होनाही वाञ्छनीय है।

प्रोफेसर न्युमैनका कथन है, कि मनुष्यके लिये मिताहारी रहना परमावश्यक है। परन्तु कितना ही नियमित रहनेपर भी किसी न किसी अङ्गकी शक्ति किंवा वासना प्रबल हो ही जाती है। मनुष्यमें कामवृत्ति सदैव वास करती है, परन्तु किसी समय वह अत्यन्त प्रबल हो उठती है। उक्त समय यदि उसे चरितार्थ न किया जाय, तो किसी न किसी प्रकार उसको शांति अवश्य होगी। ऐसा न होनेसे स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। उनका कथन है, कि वीर्यस्त्राव सर्वथा अनैच्छिक है। यह देखा गया है, कि जिन तरुण पुरुषोंने कभी हस्तमैथुन नहीं किया, यहाँतक कि उसके सम्बन्धमें कोई बात तक नहीं सुनी, उन्हें भी वीर्यस्त्राव होता है—आरम्भमें किसी प्रकारका मानसिक विकार न होने पर वीर्य निर्गत हो जाता है। कभी कभी विवाहित पुरुष, जो अधिक समय तक सहवास नहीं करते और वृद्ध पुरुष, जो अकेले पड़ जाते हैं, उन्हें भी वीर्यस्त्राव होता है। वीर्यस्त्राव पुरुषार्थका लक्षण है। इसके कारण शरीर निर्बल हो जाता है, यह धारणा बिल्कुल भ्रम मूलक है। शरीर निर्बल हो जानेपर भी कोई वास्तविक हानि नहीं होती।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

व्यायाम और अत्यन्त परिश्रम करने पर वीर्य क्षय हो जाता है अतः स्वप्नदोष नहीं होता, परन्तु इससे मानसिक शक्ति का हास हो जाता है। यही कारण है, कि बड़े बड़े पहलवान बुद्धिके मोटे दिखाई देते हैं। उनका कथन है, कि बड़ी हुई कामवासनाको घटानेके लिये प्रकृति जो उपाय करती है, वही हितकर है। अन्य उपायोंका अवलम्बन करना अनावश्यक है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं, कि अनियमित रूपसे वीर्यस्राव होना शरीरके लिये हानिकर है।

डाक्टरोंके इन उपरोक्त कथनोंसे ज्ञात होता है, कि वे नियमित रूपसे वीर्यस्राव होना सर्वथा स्वाभाविक समझते हैं। इनकी बातोंको सुनकर हमारे देशके मनुष्य भी अब वीर्यस्रावको रोग न मानकर उसे इन्द्रियोंका एक स्वाभाविक कर्म मानने लगे हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। अनियमित रूपसे और अधिक परिमाणमें होनेवाले वीर्यस्रावको तो प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान और चिकित्सक रोग मानते हैं, परन्तु नियमित रूपसे होनेवाले वीर्यस्रावको भी हम स्वाभाविक नहीं कह सकते। यद्यपि यह बिल्कुल ठीक है, कि अधिक मात्रामें वीर्यस्राव न होने पर; शरीरमें थकावट या शिथिलता नहीं मालूम होती, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि वह शरीरके लिये हितकर है।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हमारे यहाँ तो स्पष्ट उल्लेख है, कि मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्। जिसने एक बार भी वीर्यपात किया है, वह उस मनुष्यके मुकाबिलेमें कदापि नहीं ठहर सकता, जिसे कभी वीर्यस्त्राव न हुआ हो। इस बातकी पुष्टिमें हम पाश्चात्य विद्वानोंके ही कथन उद्धृत कर देना उचित समझते हैं।

अमेरिकन डाक्टर जे० एच० केलौग एम० डी० का कथन है, कि किशोर और नवतरुण पुरुषोंके हस्तदोष और विवाहित पुरुषोंमें विषय-लम्पटता बढ़ जानेके कारण वीर्य-क्षीणताकी व्याधिने भयङ्कर रूप धारण किया है। नियमित रूपसे किंवा अधिक दिनोंके बाद वीर्यस्त्रावका होना स्वाभाविक नहीं माना जा सकता। जिन लोगोंकी शारीरिक और मानसिक अवस्था अच्छी होती है और जो सदाचारी होते हैं, उन्हें स्वप्न किंवा जागरितावस्थामें अनिच्छापूर्वक वीर्यस्त्राव हो ही नहीं सकता।

डाक्टर हेनरी अपने प्रेक्टिकल होम फिज़िशियन नामक ग्रन्थमें लिखते हैं, कि भली भाँति इन्द्रिय-निग्रह करने पर भी वीर्यस्त्राव होते देखा गया है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि इसका होना स्वाभाविक है। वीर्यस्त्राव शारीरिक और मानसिक निर्बलताके ही कारण होता है।

—दाम्पत्य-विज्ञान—

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य विद्वान भी इस विषयमें एकमत नहीं हैं। डाक्टर स्टेनली हालका यह कथन, कि जैसे स्त्रियोंको ऋतुस्त्राव होता है, वैसे ही पुरुषोंको वीर्यस्त्राव होता है—हमें नितान्त भ्रम मूलक प्रतीत होता है। स्त्रियोंके आर्तव और पुरुषोंके वीर्यकी तुलना नहीं की जा सकती। स्त्रियोंका आर्तव शोणित मिश्रित एक प्रकारका द्रव होता है। उसमें शोणितका अंश दिखाई देता है, वह भी शरीरकी नाड़ियोंमें बहनेवाले रक्तके समान विशुद्ध नहीं होता। वह तो मलमूत्रकी भांति सर्वथा मलीन और निरुपयोगी होता है। उसके निर्गत हो जानेपर स्त्रियोंके शरीरमें स्फूर्ति आती है और मन प्रफुल्लित रहता है। इतना ही नहीं, बल्कि उसके अवरोध और शोषण होनेसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होता है, परन्तु वीर्यमें उससे सर्वथा विपरीत गुण पाये जाते हैं। वीर्यमें कोट्यवधि सजीव कीट वास करते हैं। प्राण-पोषक और रासायनिक द्रव्योंसे उसकी सृष्टि होती है। जिस प्रकार आर्तव निकल जानेपर स्त्रियोंके स्वास्थ्यकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार वीर्य धारण करने पर बल और बुद्धि बढ़ती है। जिसके निर्गत होने पर शरीर शिथिल हो जाता है, इन्द्रियाँ श्रान्त हो जाते हैं, मन अशान्त

-दाम्पत्य- विज्ञान-

और मस्तिष्क जड़वत् हो जाता है, उस वीर्यके साथ आर्तवकी तुलना कैसी की जा सकती है ? यदि ऋतुस्त्राव-को भांति वीर्यस्त्राव भी स्वाभाविक होता, तो दोनोंके विषयमें एक समान बातें दिखाई देतीं । आर्तव निश्चित समयपर नियमित रूपसे निर्गत होता है, उसमें कमी बेशी होना रोगका कारण समझा जाता है, परन्तु वीर्यस्त्रावके सम्बन्धमें वैसा कोई नियम दृष्टिगोचर नहीं होता । किसीको रोज, किसीको दूसरे चौथे और किसीको दसवें पन्द्रहवें दिन वीर्यस्त्राव होता है । ऋतुस्त्राव अनियमित होनेपर लोग औषधोपचार करते हैं, परन्तु वीर्यस्त्राव अनियमित होनेपर कोई औषधोपचार नहीं करता । आजतक किसी डाक्टरके पास ऐसा रोगी जाते नहीं देखा गया, जिसने उससे यह शिकायत की हो, कि मुझे अनियमित रूपसे वीर्यस्त्राव होता है, अतः कोई ऐसी दवा दीजिये, जिससे नियमित रूपसे हुआ करे । यदि वीर्यस्त्राव स्वास्थ्यके लिये हितकर है, तो जिन्हें वीर्यस्त्राव नहीं होता, उनके स्वास्थ्यमें कौन बाधा पड़ जाती है ?

लोग अपने अनुभवसे भी इस बातको अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, कि वीर्यस्त्राव होना शरीरके लिये कितना हानिकर है । वीर्यस्त्राव होनेपर दूसरे दिन शरीर कितना सुस्त, कितना शिथिल और कितना अशक्त मालूम होता है ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कभी कभी तो कमर और शिरमें असह्य वेदना भी होने लगती है । ऐसी दशामें वीर्य-स्त्रावको हम स्वास्थ्यकर कदापि नहीं कह सकते ।

सन्तानोत्पादन ही वीर्यका प्रधान कार्य है । इसी-लिये उसकी सृष्टि हुई है । ईश्वरने उसे अकारण ही निर्गत होनेके लिये नहीं बनाया । मलमूत्र और श्लेष्मा आदि मलीन और त्याज्य वस्तुयें भी अनिच्छापूर्वक त्यागी नहीं जा सकतीं । अनिच्छापूर्वक त्याग होता है तो उसे हम रोग समझते हैं । ऐसी दशामें यह मान लेना, कि वीर्यस्त्रावका होना स्वाभाविक और स्वास्थ्यके लिये हितकर है—भयानक भ्रम होगा । बिना किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक चञ्चलताके वीर्यस्त्राव होना असम्भव है ।

वीर्यरक्षाका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्यपालन है । इस विषयमें दक्षतंहितामें लिखा है कि:—

ब्रह्मचर्यं सदा रत्नं दद्यात् मेथुनं पृथक् ।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रक्षणं गुह्यभाषणम् ॥

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरिव च ।

एतन्मेथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

अर्थात् स्मरण, कीर्तन, केलि, दर्शन, गुह्यभाषण, संकल्प, चेष्टा और क्रिया समाप्ति—यहा मेथुनके आठ अङ्ग

-दाम्पत्य- विज्ञान-

हैं। इनसे विपरीत ब्रह्मचर्य है, जो सदा पालन करने योग्य है।

वीर्यस्नान क्यों होता है—यह बतलानेके लिये दक्ष-संहिताके उपर्युक्त दो श्लोक पर्याप्त हैं। केवल कामवासना को चरितार्थ करनेपरही वीर्यपात नहीं होता; बल्कि उपरोक्त आठ प्रकारोंमेंसे किसी प्रकारका मैथुन करनेपर भी वीर्य-स्नाव होता है और ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। स्मरण अर्थात् किसी स्त्री या प्रेमिकाका स्मरण करना। कीर्तन अर्थात् उसके रूप गुण और चालढालकी प्रशंसा, आलोचना किंवा चर्चा करना। केलि अर्थात् कामोत्पादक खेल तमाशे करना। दर्शन अर्थात् स्त्री अथवा प्रेमिकाका दर्शन करना। गुह्यभाषण अर्थात् उसके साथ एकान्तमें वार्तालाप करना। संकल्प अर्थात् मिलन आदि बातोंपर विचार करना—बैसे मिलेंगे क्या कहेंगे इत्यादि सोचना। चेष्टा अर्थात् मिलनके लिये यत्न करना और क्रिया समाप्ति अर्थात् सहवास करना।

कामके इन आठ अंगोंमें अंतिम अंग (सहवास) ही एक ऐसा अंग है, जिसमें प्रवृत्त होने पर स्वाभाविक रीतिसे वीर्यपात होता है। उसके अतिरिक्त शेष सभी अंग ऐसे हैं, जिनसे चित्त चञ्चल तथा चलायमान और इन्द्रियां

-दाम्पत्य- विज्ञान-

उत्तेजित हो उठती हैं। प्रेमिकाका स्मरण, गुणकीर्तन केलि, दर्शन, सम्भाषण, संकल्प और चेष्टा—यह बातें ऐसी हैं, जो मनुष्यकी कामवासनाको जागरित कर देती हैं। कामवासना जागरित होनेपर मनमें एक प्रकारका आन्दोलन सा उठता है और उसीके फलस्वरूप इन्द्रियां भी उत्तेजित हो उठती हैं। अन्तमें इसी मानसिक विकारके कारण रात्रिके समय स्वप्नमें वीर्यस्राव होता है।

डाक्टर स्टेनली हालने जिन तीन मनुष्योंके वीर्यस्राव का हिसाब रक्खा था और जिन्हें वे पूर्ण स्वस्थ सदाचारी और विद्वान बतलाते हैं, उनके सम्बन्धमें क्या यह बात कही जा सकती है, कि वे इन सभी प्रवृत्तियोंसे दूर रहते होंगे ? स्मरण, संकल्प आदि क्रियायें मानसिक व्यभिचार हैं। इनमें प्रवृत्त होनेसे भी उसी तरह वीर्यस्राव हो सकता है, जैसे शारीरिक व्यभिचार करनेसे होता है। यद्यपि संसारमें केवल वही दुराचारी गिना जाता है, जो सहवास द्वारा अपनी कामवासनाको चरितार्थ करता है, परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करनेपर उपरोक्त सभी प्रवृत्तियां दुराचार प्रमाणित होती हैं। लोग बाह्य सदाचारको देखकर भले ही किसीको सदाचारी मान लें, परन्तु अन्तरंग बातें जाने बिना हम उसे सदाचारी नहीं कह सकते। जो मनसा

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वाचा कर्मणा, तीनों प्रकारसे, सदाचारका पालन करता है, वही सदाचारी और वही ब्रह्मचारी है। जो उपरोक्त आठमेंसे किसी प्रकारकी भी काम-प्रवृत्तिमें संलग्न रहता है, उसे हम ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। यदि कोई चाहे, कि हम मानसिक व्यभिचार करते हुए ब्रह्मचर्य पालन करें, तो वह असम्भव है। मानसिक व्यभिचार किंवा इन्द्रियोंकी चंचलताके कारण वीर्य अपने स्थानसे च्युत हो जाता है और जो वीर्य च्युत हो जाता है, वह किसी न किसी तरह निर्गत हुए बिना नहीं रहता। मनका प्रभाव इन्द्रियोंपर अवश्य पड़ता है और इन्द्रियाँ चंचल होनेपर ब्रह्मचर्य अवश्य नष्ट होता है।

जिन्हें वीर्यस्त्रावका कारण जानना हो, उन्हें कामके इन आठ अंगोंपर भली भाँति विचार करना चाहिये। विचार करनेपर उन्हें स्पष्ट दिखाई देगा, कि वीर्यस्त्राव आप ही आप नहीं होता, बल्कि किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक दुर्वासनामें प्रवृत्त होनेके कारण होता है। जो लोग चाहते हों, कि हमारा ब्रह्मचर्य अखण्ड रहे, हम वीर्यवान और शक्तिशाली होकर दाम्पत्य-जीवनका प्रकृत आनन्द प्राप्त करें, उन्हें यह आठों प्रकारकी कामप्रवृत्तिका सर्वथा त्याग करना चाहिये। उन्हें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये,

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कि प्रकृत किंवा अप्रकृत मैथुन ही केवल ब्रह्मचर्य का वाधक नहीं है, बल्कि यह मानसिक विकार उससे भी अधिक भयंकर है। स्त्री संग करनेपर प्रकृत रूपसेही वीर्यस्राव होता है, परन्तु मानसिक विकारोंके कारण मन मस्तिष्क और इन्द्रियां सभी आन्दोलित होते हैं और उनके उस प्रबल आन्दोलनके कारण स्वप्नमें अस्वाभाविक रूपसे वीर्यस्राव होता है। स्त्रीसंग करनेपर केवल इन्द्रियोंको ही परिश्रम करना पड़ता है, मस्तिष्कपर उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु मानसिक विकारोंके कारण मस्तिष्क बड़ी बुरी तरह आन्दोलित होता है। यहांतक कि स्नायु एक तरहसे पीड़ित हो उठते हैं और उन्हें विवश होकर वीर्य त्याग करना पड़ता है। यही कारण है, कि स्त्रीसंग करनेपर बहुधा चित्त प्रसन्न रहता है और शरीरमें स्फूर्ति मालूम होती है, परन्तु वीर्यस्राव होनेपर शरीर शिथिल एवं क्लान्त हो जाता है। इसलिये दाम्पत्य-जीवनको सुमधुर बनानेकी इच्छा रखनेवालोंको अपने मनमें बुरे विकारोंको भूलकर भी स्थान न देना चाहिये। याद रखिये, यह मानसिक विकार ही दाम्पत्य-जीवनको विषमय बना देते हैं।

विवाह ।


विवाह जैसे जटिल और विवादग्रस्त विषयपर विस्तार पूर्वक विचार किया जाय, तो इस पुस्तक जैसी दो चार पुस्तकें तैयार हो सकती हैं। हमारे धर्मशास्त्रोंमें इसकी पर्याप्त विवेचना की गयी है। विवाह किस अवस्था में करना चाहिये, कैसी स्त्री और कैसा पति पसन्द करना चाहिये—प्रभृति सभी बातोंपर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। विवाहका उद्देश्य बतलाते हुए उन्होंने लिखा है; कि स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरेकी सहायतासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—यह चारों पदार्थ प्राप्त करें—यही विवाहका उद्देश्य है। ब्रह्मचर्याश्रममें धर्ममूलक प्रवृत्तिकी शिक्षा और गृहस्थाश्रममें धर्ममूलक प्रवृत्तिकी चरितार्थता होती है। गृहस्थाश्रम प्रवृत्तिमें मुग्ध होकर बन्धन व अधोगति प्राप्त करनेके लिये नहीं है, परन्तु ब्रह्मचर्याश्रमसंही जिनका एका-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

एक संन्यासाश्रममें अधिकार नहीं है, उनको धर्ममूलक प्रवृत्तिमार्गसे धीरे धीरे उन्नति करते हुए अन्तमें निवृत्ति-मूलक संन्यास आश्रमके अधिकारी बनानेके लिये गृहस्थाश्रमका विधान किया गया है। इस लिये गृहस्थाश्रममें प्रत्येक कार्यकी विधि इस प्रकारकी होनी चाहिये, कि जिससे धर्ममूलक प्रवृत्ति की चरितार्थतासे निवृत्तिमें रुचि हो, वासनाकी वृद्धि न होकर भाव-शुद्धि मूलक भोग द्वारा वासनाका क्षय हो और आध्यात्मिक मार्गमें उन्नति लाभ हो।

संभव है, कि विवाहका यह महान् उद्देश्य हमारे पाठकोंके ध्यानमें न उतरे। हमने लोगोंको बहुधा यह कहते सुना है कि “पुत्रार्थं क्रियते भार्या”। इससे पता चलता है, कि लोग विवाहका उद्देश अब सन्तानोत्पत्ति ही तक परिमित रखना चाहते हैं। कुछ लोगोंने तो इससे भी आगे बढ़कर यह क्षेत्र और भी संकुचित कर दिया है। उनका कथन है, कि स्त्रियां बच्चे पैदा करनेकी मशीनें नहीं हैं। विवाह केवल आनन्दके लिये किया जाता है, इस लिये और सब ऋमेलोंको छोड़, ऐसे उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये, जिससे चिरकालतक निर्विघ्नरूपसे आनन्द प्राप्त होता रहे।

विवाहके पवित्र और धर्ममूलक उद्देशको एकदम पशु भावना रूप दे देना हम ठीक नहीं समझते। अन्य देशोंकी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

भाँति भारतमें स्त्री केवल विषय विलासमेंही पतिकी सहचरी नहीं मानी गयी है। यहाँ उसे समस्त गार्हस्थ्य धर्ममें सहधर्मिणी और अर्धांशभागिनी होनेका गौरव प्राप्त है। इसलिये स्त्रीको केवल आनन्दप्राप्तिका साधन समझ, उससे कामयन्त्रका काम लेना ठीक नहीं। वह सुख-दुःख और समस्त सांसारिक प्रवृत्तियोंमें पुरुषका हाथ बटाती हैं। उसकी सहायतासे अपनी जीवन यात्राको सुगम और निष्कण्टक बनाना यही विवाहका प्रधान उद्देश है। नित्यनेमित्तिक कार्यों द्वारा धनोपार्जन करना, नीति न्याययुक्त उपायों द्वारा धन प्राप्त करना, यथानियम सन्तानोत्पत्ति करना और अन्तमें मोक्ष मार्गकी ओर अग्रसर होना—यह बातें उसके अन्तर्गत हैं।

भारतमें सम्प्रति वर्णाश्रम धर्म लोप हो गया है। जब केवल चार ही आश्रम और चार ही वर्ण थे, तब विवाहके नियम सब लोगोंके लिये एक समान ही थे। परन्तु आज हिन्दू समाज हजारों जातियाँ और सैकड़ों सम्प्रदायोंमें विभक्त है, अतः प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय और जातियोंके भिन्न भिन्न नियमोंके अनुसार विवाहके नियमोंमें भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। हम इन उलझनोंमें अपने पाठकोंको न उलझाकर केवल यह बतलाना चाहते हैं, कि किन सर्व-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

मान्य नियमोंके अनुसार आचरण करनेपर उनका दाम्पत्य जीवन चैनसे कट सकता है ।

ध्यान देने योग्य सबसे पहली बात यह है कि जिन लोगोंने ब्रह्मचर्य धारण कर कुछ सामर्थ्य संचय किया हो और जिन्होंने हस्त मैथुन किंवा वीर्यस्त्रावकी व्याधियोंमें पड़ अपना पुरुषत्व न खोया हो, उन्हींको विवाह करनेके लिये अप्रसर होना चाहिये । जिन्होंने अपना पुरुषत्व खो दिया हो, उन्हें भूल कर भी विवाह न करना चाहिये । ऐसा न करनेसे प्रथम ग्रासमें ही मर्क्षकापात होता है और स्त्री पुरुष दोनोंको आजीवन दुःखी रहना पड़ता है ।

यद्यपि विषयवासनाको चरितार्थ करना यही एकमात्र विवाहका उद्देश्य नहीं है, तथापि प्रकृतिकी लीला ऐसी विचित्र है, कि दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करते ही लोग एकान्त सेवनके लिये व्याकुल हो उठते हैं । यह व्याकुलता स्त्री और पुरुषोंके हृदयमें विवाह होनेके बहुत पहले से ही डेरा डाले रहती है । किशोरावस्थासे ही लोग इन बातोंका चिन्तन करने लगते हैं, कि विवाह होनेपर हम पतिपत्नी कैसे रहेंगे और किस समय क्या करेंगे । विवाहके पवित्र उद्देश और दाम्पत्य विज्ञानको उन्हें शिक्षा नहीं मिलती, अतः उनसे यह आशा रखना, कि वे समझ

-दाम्पत्य- विज्ञान-

बुझकर, सावधानीके साथ, इन्द्रिय निग्रह पूर्वक दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करेंगे—दुराशामात्र है। प्रकृति उन्हें केवल इन्द्रिय परिचालनकी शिक्षा देती है, अतः उसके लिये उनका व्याकुल हो उठना स्वाभाविक ही है।

जो लोग शैशवकालमें ही माता पिता द्वारा विवाह बन्धनमें जकड़ दिये जाते हैं, उनके अतिरिक्त बड़ी उम्र-वालोंमें बिरला ही ऐसा मिलेगा, जो विवाह होनेपर नि सङ्कोच भावसे सहवास न करता हो। जो लोग विद्वान्, समझदार और कामशास्त्रके ज्ञाता होते हैं, वह भी उस समय इन्द्रिय निग्रह नहीं कर सकते। इस विषयका यत्किञ्चित् ज्ञान रखनेवाले सुकुमार बच्चोंसे लेकर वृद्ध पर्यन्त सभी कोटिके मनुष्य इन्द्रिय परिचालनके लिये व्यग्र रहते हैं।

हमारी इन बातोंसे कोई यह न समझे, कि विवाह होनेपर हम सहवास करना अनुचित समझते हैं। सह-वास तो प्रधान गार्हस्थ्य धर्म और संसारका मूल है। दाम्पत्य जीवनमें पदार्पण कर जो इस धर्मका पालन न करे, उसे हम दोष भागी कह सकते हैं। गृहस्थके लिये सहवास परमावश्यक कर्त्तव्य कर्म है, परन्तु केवल विवाह होनेसे ही मनुष्य सहवास करनेका अधिकारी नहीं होता। इस धर्ममें प्रवृत्त होनेके पहले स्त्री पुरुष—दोनोंको अपनी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अवस्था, अपना सामर्थ्य, अपनी स्थिति और देशकालादि बातोंका विचार कर लेना चाहिये । इन सब बातोंका विचार न करनेसे स्वास्थ्य और यौवन कैसे नष्ट हो जाता है, स्त्री और पुरुष दोनोंका जीवन कैसा दुःखमय हो जाता है— इन बातोंपर हम आगे चल कर भलीभाँति विचार करेंगे ।

आश्रम धर्मका लोप हो जानेके कारण सम्प्रति भारत-वासियोंका विवाहकाल प्रायः अनिश्चित हो गया है । जाति और सम्प्रदायगत लौकिक प्रथाओंके अनुसार भिन्न भिन्न जातिमें पुरुषोंका विवाह जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त हुआ करता है । किसी जातिमें जन्मते ही, किसी जातिमें दश पाँच वर्षकी अवस्थामें और किसी जातिमें पन्द्रह बीस वर्षकी अवस्थामें पुरुषोंका विवाह कर दिया जाता है । इसके बाद वृद्धावस्था पर्यन्त विवाह करनेका अधिकार भी प्रायः समस्त जातिके पुरुषोंने सुरक्षित रक्खा है । स्त्रियोंके विषयमें भी प्रायः वही नियम है । जन्मसे लेकर बारह तेरह वर्षकी अवस्थाके पहले पहले अधिकांश स्त्रियोंका विवाह कर दिया जाता है । पन्द्रह सोलह वर्षकी अवस्थामें भी कई जातियोंमें विवाह होता है, परन्तु इससे अधिक उम्रकी अविवाहिता स्त्री बहुत कम दिखाई देती हैं । विधवा हो जानेपर पुरुषोंकी तरह पुनर्विवाह करनेका

-दाम्पत्य-विज्ञान-

अधिकार भी कुछ उच्च वर्णके हिन्दुओंको छोड़ अधिकांश जातिकी स्त्रियोंको प्राप्त है। इस तरह हम देखते हैं, कि आजकल विवाह करना नित्यका एक धन्धा या हँसी खेल हो पड़ा है। इस अनियमित प्रवाहको रोकना, अब किसीके अधिकारकी बात नहीं रही। जब इस भयंकर विष्टुल्लताके कारण सर्वनाशका समय उपस्थित होगा, तब आपोआप लोगोंको आँखे खुलेंगी और वे ऋषिमुनि निर्धारित आश्रम धर्मके प्राचीन नियमोंके पालनार्थ प्रस्तुत होंगे ; सम्प्रति इस सम्बन्धमें हमें कोई आशा नहीं, अतः अधिक लिखना भी व्यर्थ समझते हैं।

विवाह एक सामाजिक और धार्मिक बन्धन है। यह अपनी अपनी जाति और अपने अपने धर्मके अनुसार किसी न किसी तरह निपटा लिया जाता है। इसको हम लौकिक आचारके सिवा और कुछ नहीं कह सकते। प्रकृत विवाह तो वही है, जब स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरेके सहायक बन प्रजोत्पत्ति करने और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष साधने योग्य अवस्था प्राप्त कर परिणय सूत्रमें आबद्ध हों और सानन्द अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करें। यदि हम विवाहके मोक्ष साधनादि महान उद्देश्योंको किनारे रख दें और केवल सन्तानोत्पत्तिहीको विवाहका एकमात्र

-दाम्पत्य-विज्ञान-

उद्देश मान लें, तब भी इस बातका विश्वास नहीं दिलाया जा सकता, कि आजकल जिस अवस्थामें विवाह किया जाता है, उस अवस्थामें मनुष्य वह कार्य सुचारु रूपसे चला सकता है। चिरकाल तक स्वास्थ्य और यौवन कैसे स्थिर रखा जा सकता है, सुन्दर, गुणवान और दृष्टपुष्ट सन्तान कैसे उत्पन्न की जा सकती है--इन बातोंको वह दुधमुँहे बच्चे कैसे समझ सकते हैं ? विवाहके समय दोनोंकी कमसे कम इतना अवस्था अवश्य होना चाहिये, कि वे अपने कर्त्तव्य कर्मोंको भली भाँति समझ सकें। ऐसी अवस्था प्राप्त होनेके पहले जो विवाह किये जाते हैं, उन्हें हम प्रकृत विवाह नहीं कह सकते। जिस विवाहसे विवाहका उद्देश सिद्ध हो, वही प्रकृत विवाह है। ऋषि-मुनियोंके मतानुसार कमसे कम सोलह वर्षका स्त्रियाँ और पचीस वर्षके पुरुष इस धर्मको भली भाँति निबाह सकते हैं।

परन्तु हम पहले ही कह चुके, कि इस प्रयाहको रोकना अब किसीके सामर्थ्यको बात नहीं रही। इसे हम लोकाचार खुशीसे मान सकते हैं, परन्तु इसकी जड़ अब इतनी मजबूत हो गयी है, कि कोई उसे तिलभर भा इधर उधर नहीं कर सकता। सामाजिकता और धार्मिकताका इस

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कुप्रथा पर इतना गहरा रंग चढ़ गया है, कि प्रलयके पहले शायद ही वह छूट सके। लोग चाहें ता इस सामाजिक और धार्मिक कहलानेवाले बन्धनको आसानीसे तोड़ सकते हैं। कोई भी मनुष्य यह कह सकता है, कि मैं अपनी लड़कीका विवाह सोलह और लड़केका विवाह पच्चीस वर्षको अवस्थाके पहले न करूंगा। परन्तु इसके लिये चाहिये साहस और आत्मबल। इन बातोंका जन साधारणमें प्रायः अभाव ही पाया जाता है। इसके पहले भी चाहिये इस बातकी समझ कि बचपनमें व्याह करनेसे न केवल बच्चोंका ही अनिष्ट होता है, बल्कि स्वदेशका भी अपकार होता है परन्तु यह सब बड़ी दूरकी बातें हैं। समाजके बन्धनोंको देश-कालानुसार बदल देनेका तो किसीको विचार ही नहीं आता। आ भी कैसे सकता है? जिस शिक्षासे इन विचारोंका उदय हो सकता है, उस शिक्षाका ही अभाव है। जब मूल ही नहीं, तब शाखा और पत्र कहांसे हों? देशमें अविद्याका घोर अन्धकार छाया हुआ है। उसी अविद्याके कारण, माता पिता अपने नन्हे नन्हे बच्चोंको विवाहके बन्धनमें जकड़ देनेके लिये लालायित हो उठते हैं। विवाहका विचार पहले पहल उन्हींके हृदयको आन्दोलित करता है। विचारे बच्चे विवाह क्या चाहें और क्यों किया

-दाम्पत्य-विज्ञान-

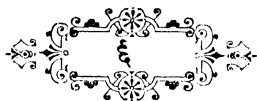
जाता है, यह समझनेके पहलेही नव विवाहिता बधूके साथ कोठड़ीमें बन्द कर दिये जाते हैं। माता पिता अपने बच्चों-को, बच्चोंकी सृष्टि करते देख आनन्दसे पुलकित होने लगते हैं।

आजकल भारतवर्षकी यही दशा है। सर्वत्र यही होता है। परन्तु हम अपने पाठकोंको भली भांति बतला देना चाहते हैं, कि धार्मिक तथा सामाजिक बन्धनोंका बहाना कर आप अपना व्याह भले ही छोटी अवस्थामें कर लें, परन्तु शयन-गृहमें बिना योग्यता प्राप्त किये पदार्पण न करें। विवाहके सम्बन्धमें आप यह कह सकते हैं कि हमें मजबूरन छोटी अवस्थामें व्याह करना पड़ा; समाज और स्वजनोंने हमें वैसा करनेके लिये बाध्य किया; परन्तु सहवासके सम्बन्धमें आप वैसा नहीं कह सकते। इसके लिये कोई किसीको मजबूर नहीं करता। यदि आपमें कुछ भी समझ हो, तो आप असमयमें ही सन्तानोत्पत्तिकी अनधिकार चेष्टा न करें। आप उचित समयतक इन्द्रिय निग्रहकर अपने स्वास्थ्य और यौवनको चिरस्थायी बना सकते हैं, सुन्दर और दीर्घायु सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। यह आपके हाथकी बात है। केवल थोड़ीसी समझ और थोड़ासा आत्मबल चाहिये और कुछ नहीं। इतनेहीसे

—दाम्पत्य-विज्ञान—

आप अपना और अपने देशका मुख उज्ज्वल कर सकते हैं ।
किन्तु यदि आपका और आपकी सहधर्मिणीका स्वास्थ्य
सन्तोषजनक हो, दोनों जनकी अवस्था सन्तानोत्पत्तिका
कार्य सुचारू रूपसे चलाने योग्य हो गयी हो और दोनों
जनने दाम्पत्य-विज्ञानका ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, तो
निःसङ्कोच भावसे शयनगृहमें पदार्पण कर गार्हस्थ्य-धर्मका
पालन कर सकते हैं ।





शयन-गृह



शयन-गृह नव-दम्पत्तियोंके लिये नन्दनवन, गृहस्थोंके लिये तपोभूमि और विलासियोंके लिये स्वर्ग है । शयन-गृहमें ही नवदम्पति संसारके समस्त दुःखोंको भूलकर अमरावतीके देवताओंकी भाँति विचरण करते हैं । शयन-गृहमें ही धर्मपरायण गृहस्थ सृष्टिकार्यका समारंभ कर पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये अग्रसर होते हैं । शयन-गृहमें ही विलासियोंको अनिर्वचनीय सुख और शोकसन्तप्त मनुष्योंको यत्किञ्चित् शान्ति प्राप्त होती है और शयन-गृहमें ही कुल, जाति और देशका मुख उज्ज्वल करनेवाली मानव-सन्तानका भाग्य निर्मित होता है । अतः शयनगृहके सम्बन्धमें प्रत्येक मनुष्यको आवश्यक ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये ।

दुर्भाग्यवश भारतवासियोंकी दशा आजकल इतनी हीन हो रही है कि वे अपने रहनेके लिये समुचित निवास-

-दम्पत्य-विज्ञान-

स्थानका भी प्रबन्ध नहीं कर सकते । जिन्हें ईश्वरने ऐश्वर्य दे रक्खा है, जिनपर लक्ष्मीकी कृपा है, वे भले ही गगन-स्पर्शी अट्टालिकायें खड़ीकर आनन्दसे रह लें, किन्तु जो लोग साधारण कोटिके हैं, जिनकी आय परिमित है, वे इस सौभाग्यसे वञ्चित ही देखे जाते हैं । शहरमें रहनेवाले आजकल अधिक सुखी समझे जाते हैं, परन्तु इस बातमें वे एक देहातीकी समता कदापि नहीं कर सकते । शहरसे दूर रहनेवाला एक गरीबसे गरीब ग्रामीण भी खाने पकाने और सोने बैठनेके लिये भिन्न-भिन्न स्थानोंकी योजना करता है । परन्तु शहरमें रहनेवाले भले भले गृहस्थ भी निवास-स्थान, रन्धनशाला और शयन-गृह प्रभृति स्थान भिन्न-भिन्न नहीं रख सकते । दिनमें जो स्थान चौकेका काम देता है, उसे रात्रिको शयन-गृह बना लेना एक साधारण बात है, किन्तु कहीं कहीं तो यहाँतक देखा गया है, कि एक ही कोठड़ीमें कपड़ेके पड़दे लगा लगाकर अनेक दम्पति शयन करते हैं । ऐसी दशामें शयन-गृहके सम्बन्धमें लम्बी चौड़ी बातें लिखते हमें सङ्कोच मालूम होता है । फिर भी इन बातोंको हम इसलिये लिख रहे हैं, कि जिन बन्धुओंको ईश्वरकृपासे सब बातोंकी सुविधा हो, वे केवल अज्ञानताके कारण इस सुखसे वञ्चित न रहें ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

शयन-गृह जितना ही बड़ा और हवादार हो, उतना ही अच्छा है। जिस कमरेमें गुरुजनोंका आवागमन हो, उसे शयनके लिये पसन्द करना ठीक नहीं। जो स्थान पसन्द किया जाय, वह सुन्दर, नेत्ररञ्जक और रमणीय होना चाहिये। वन उपवन और वाटिकाओंमें इसके लिये प्रबन्ध किया जा सके, तो बहुत ही अच्छा है। अन्यथा किसी एकान्त कमरेको ही इसके लिये पसन्द करना चाहिये। उस कमरेकी सजावट और व्यवस्था ऐसी रखनी चाहिये; जिससे आनन्द और शान्तिपूर्वक सुखकी नींद सोई जा सके। शयनगृहका फर्श यदि मिट्टीका हो, तो लिपा-पुता हुआ और पक्का हो, तो धोधाकर साफ रखना चाहिये। दीवारें साफ और चूनेसे पुती हुई होनी चाहियें। कमरा हवादार अवश्य हो, परन्तु उसमें पलङ्ग या शैय्या इस प्रकार रखनी चाहिये, जिससे हवाका झोंका सीधा शरीरमें न लगे। इससे कभी कभी स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है। यदि शहर हो और कमरेमें बिजलीका पट्टा हो, तो उसे बीच कमरेमें रखना चाहिये, परन्तु ठीक उसके नीचे सोनेसे शरीर अकड़ जाने या सरदी लग जानेकी सम्भावना रहती है। बैठने और पढ़ने लिखनेके लिये आवश्यकता हो, तो एक ओर टेबिल व कुरसियाँ भी रखनी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

चाहिये । शयनगृहमें घड़ी हो, तो बहुत ही अच्छा है । इससे सोने और उठनेका समय ठीक रखनेमें बड़ी सहायता मिलती है ।

शयनगृहमें सुन्दर और सुशोभित चित्रादि रखना बहुत ही आवश्यक है । वैज्ञानिकोंका कथन है, कि सन्तानोत्पत्ति करते समय माता पिता जिन पदार्थों या दृश्योंको देखते हैं, उनका भावी सन्तानपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है । भले और सुन्दर मनुष्योंके चित्र देखनेसे भली और कदर्य तथा बुरे चित्रोंको देखनेसे बुरी सन्तान उत्पन्न होती है । शयनगृहमें न केवल सुन्दर मनुष्योंके ही चित्र रखने-चाहियें, बल्कि हरे भरे वनवृक्ष, पुष्पलतार्य, सुन्दर पशुपक्षी और प्राकृतिक दृश्यके ऐसे सुशोभित चित्र भी रखने चाहियें, जिनके दर्शनसे प्रसन्नता प्राप्त हो । जिन चित्रोंको देखनेसे भय, शोक, ग्लानि और चिन्ता उत्पन्न हो, उन्हें शयनगृहमें कदापि स्थान न देना चाहिये ।

तरह तरहके सुन्दर खिलौने, गाने बजानेका शौक हो तो हारमोनियम सितार आदि बाजे, तथा अन्यान्य सुशोभिञ्च वस्तुओंसे कमरेको भरसक सजाना चाहिये । दीवारों पर हो सके तो खणोंपदेशके तस्ते टांक देना चाहिये । इससे उठते बैठते :भली बातोंका स्मरण रहता है और

-दाम्पत्य-विज्ञान-

चित्तको शान्ति मिलती है। इस प्रकार सजे हुए कमरेमें सोनेसे चित्त प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता है अथच निद्रा भी खूब आती है।

शयनगृहके साथ साथ शयन स्थानका भी ध्यना रखना चाहिये। पलंग पर सोनेसे वात, पित्त और कफ—तीनों प्रकारके रोग शान्त होते हैं। भूलेपर सोनेसे वात और कफकी शान्ति होती है। भूमिपर सोना अधिक अनुचित नहीं; परन्तु इससे कभी कभी वात रोग हो जानेकी सम्भावना रहती है। तख्ते पर सोनेसे भी वातका प्रकोप बढ़ता है। इसलिये सोनेका स्थान बहुत सोच समझकर निश्चित करना चाहिये। निश्चित करते समय देश, काल और स्थल आदि विषयोंका भली भाँति विचार कर लेना चाहिये।

शैय्या कोमल और गुदगुदी होनी चाहिये। ऊपरी चद्दर साफ सुथरी और चिकनी होनी चाहिये। बनावत या कम्बलका बिस्तरा भी अच्छा होता है, परन्तु रुईका गद्दा अधिक पसन्द करने योग्य है। सोते समय शरीर से पसीना निकलता है, अतः शैय्या खराब हो जाती है और उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। इसलिये प्रति सप्ताह कमसे कम उसे एकबार धूप अवश्य दिखानी चाहिये।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

शरीरको आराम पहुंचानेके लिये तकियोंका व्यवहार किया जाता है। किसी किसीको बहुत तकियोंकी जरूरत पड़ती है, परन्तु यह ठीक नहीं। शिरके नीचे एक तकिया रखना काफी है। परन्तु वह भी मुलायम और गुदगुदा होना चाहिये। बहुत ऊंचे तकियेका व्यवहार करना शरीरके लिये हानिकर है। उत्तम शैय्यामें शयन करनेसे शरीर पुष्ट होता है। निद्रा खूब आती है, वीर्यकी वृद्धि होती है और धैर्य तथा शक्ति प्राप्त होती है।

बहुधा यह देखा जाता है, कि पति और पत्नी दोनों एक ही शैय्यामें विश्राम करते हैं। यद्यपि यह निन्दनीय नहीं है तथापि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दोनोंका एक दूसरेसे अलग सोना परमावश्यक है। यह तो सभी लोग जानते हैं, कि श्वास लेते समय जो हवा बाहर निकलती है, वह विषैली और स्वास्थ्यके लिये हानिकर होती है। एक साथ सोनेसे वही हवा दोनोंके श्वासमें जाती है और शनैः शनैः स्वास्थ्यको हानि पहुंचाती हैं। यदि दोमेंसे किसी एकको दमा, खांसी या क्षय आदिकी बीमारी हुई, तो उसके कीटाणु स्वांस द्वारा दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर उसे भी रोगी बनाते हैं।

वैज्ञानिकोंके मतानुसार एक साथ सोनेमें और भी एक

-दम्पत्य-विज्ञान-

दोष है। उनका कथन है, कि स्त्री और पुरुष दोनोंके शरीरमें एक प्रकारकी बिजली रहती है, जो एक दूसरेका स्पर्श होते ही शरीर भरमें दौड़ जाती है और नस-नसमें विलक्षण जागृति उत्पन्न कर देती है। इसी आकर्षण या बिजलीके कारण पुरुषके स्पर्शसे स्त्रीकी और स्त्रीके स्पर्शसे पुरुषकी काम-वृत्ति जागरित होती है। एक साथ सोनेसे यह अद्भुत आकर्षण नष्ट हो जाता है। फिर स्त्रीके स्पर्शसे न पुरुषहीके मनमें हलचल पैदा होती है, न पुरुषके स्पर्शसे स्त्रीके ही हृदयमें सनसनी फैलती है। वास्तवमें यही आकर्षण सांसारिक सुखका मूल है। इसके नष्ट हो जानेसे जीवन प्रायः निरस हो जाता है।

इसके विपरीत स्त्री पुरुषोंका एक साथ सोना कभी कभी लाभजनक भी हो पड़ता है। यह देखा गया है, कि जिन स्त्री पुरुषोंमें कलह और मनोमालिन्य रहता है, उनमें एक साथ सोनेसे प्रेम उत्पन्न हो जाता है। विलायतके एक दम्पतिमें बड़ा मनोमालिन्य रहता था। अतः स्त्री पुरुष दोनोंने एक दूसरेसे मुक्ति-लाभ करनेके लिये दावा किया था। न्यायाधीश बड़ा चतुर था। उसने मामलेकी जाँचकर आज्ञा दी, कि पहले तुम दोनों जन सात दिन तक एक शैय्यामें शयन करो, इसके बाद मेरे

—दाम्पत्य-विज्ञान—

पास आना, मैं न्याय कर दूंगा। त्रिवश हो दोनों एक शैय्यामें शयन करने लगे। केवल खाने पीनेके समयको छोड़ और किसी समय कोई उनके पास न जाता था। आठवें दिन जब दोनों जन न्यायाधीशके पास गये तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया, कि अब हम दोनोंमें प्रेम हो गया है, अतः हम अलग होना नहीं चाहते। इस प्रकार एक साथ सोनेसे कभी कभी पारस्परिक स्नेहमें वृद्धि भी होती है, परन्तु यदि मामला ऐसा न हो, तो कभी एक साथ न सोना चाहिये।

एक साथ सोनेसे सबसे बड़ी हानि यह होती है, कि पति पत्नीको सदैव कामका चिन्तन हुआ करता है और वे अपेक्षा कृत अधिक बार समागमकर स्वास्थ्य खो बैठते हैं। पृथक् पृथक् शैय्याओंमें शयन करनेसे ऐसा होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। परन्तु इन बातोंका तात्पर्य यह नहीं है, कि पति पत्नी कभी एक साथ शयन ही न करें। उचित तो यह है, कि शयनगृहमें दो भिन्न शय्यार्य रखी जायें और जबतक निद्रा न आवे, तबतक एक साथ रहा जाय, किन्तु निद्रा आते ही अपनी अपनी शैय्यामें चला जाया जाय। यह भी आवश्यक है, कि शयनगृहमें दुधमुँहे बच्चोंके अतिरिक्त और बच्चे न रहें। माता

—दाम्पत्य-विज्ञान—

पिताकी प्रवृत्ति और उनके वार्तालापका नादान बच्चोंपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। उन्हें नादान समझकर उनकी उपेक्षा न करनी चाहिये।

सोते समय पहननेके कपड़े हलके और साफ सुथरे होने चाहिये। हो सके तो उन्हें रखनेके लिये शयन-गृहमें ही आलमारी आदिका प्रबन्ध करना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है, कि स्त्री पुरुषको एक दूसरेके निकट दिगम्बरावस्थामें कदापि न सोना चाहिये। ऐसा करनेसे न केवल मर्यादा ही भंग होती है, बल्कि पारस्परिक आकर्षण भी घट जाता है।





प्रेमोपचार ।

गार्हस्थ्य-धर्म पालन करनेके लिये जो लोग शयन-गृहमें पदार्पण करें, उन्हें सर्वप्रथम प्रेमकी महिमा भली भांति समझ लेनी चाहिये । प्रेमशब्द देखनेमें तो बड़ा छोटा—केवल ढाई ही अक्षरका है, परन्तु उसकी महिमा इतनी गहन और इतनी अनन्त है, कि सहस्र सहस्र योगी-यती, ज्ञानी-ध्यानी, ऋषि-मुनि और लेखक तथा कवि अनादिकाल-से उसका गान करते चले आ रहे हैं, किन्तु अबतक किसीने अन्त नहीं पाया । वास्तवमें प्रेमही संसारका सार, विश्वका मूल और प्राणियोंका प्राण है । प्रेम पर ही इस सृष्टिका विकास अवलम्बित है । संसारमें यदि प्रेमका अस्तित्व न होता, तो बिना प्रलय हुए ही उसका सर्वनाश हो गया होता और इस धरातलपर महासागरकी उत्ताल तरंगे क्रीड़ा करने लगी होतीं । कोई किसीको पहचानता भी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

नहीं और मुंहसे बोलता भी नहीं। संसारमें जो कुछ होता है, जो कुछ दिखाई देता है, उन सबका कारण केवल प्रेम ही है। माता और पुत्र, भाई और बहिन, पति और पत्नी आदि स्वजनों किंवा सामान्य मनुष्योंमें एक दूसरेके प्रति जो प्रेम भावना होती है, उसके पोषणके लिये प्रवृत्तियोंका जन्म होता है। यदि एक मनुष्य स्वजनोंके प्रेमजालमें जकड़ा हुआ न हो, तो उनकी उदर-पूर्तिके लिये वह धनो-पार्जनकी प्रवृत्तिमें पड़े ही नहीं। यदि ईश्वरके प्रति प्रेम-भावना न हो, तो साधु पुरुष जपतप करें ही नहीं। इन बातोंपर विचार करनेसे मालूम होता है, कि संसारकी समस्त प्रवृत्तियोंका मूल केवल प्रेम ही है।

प्रेम ईश्वर प्रदत्त वस्तु है। मनुष्यमात्रको उसने यह बड़ी उदारताके साथ प्रदान किया है। जिस मनुष्यके हृदयमें प्रेम न हो, उसे हम हृदयहीन कह सकते हैं। प्रेमकी भावना जन्मसे ही मनुष्यके हृदयमें बीजरूपसे विद्यमान रहती है। धीरे धीरे यह बीज अंकुरित होता है और शनैः शनैः संसारकी वस्तुओंपर अधिकार जमा लेता है। बच्चेका प्रेम पहले पहल अपने माता-पिता पर, फिर भाई बहन तथा स्वजनोंपर और तदनन्तर संसारकी अन्याय वस्तु तथा मनुष्योंपर होता है। जो जितना ही बुद्धिमान,

—दाम्पत्य-विज्ञान—

गुणवान, सतोगुणी और धर्म तथा कर्मनिष्ठ होता है, उतना ही उसका प्रेमभाव बढ़ता जाता है। यही कारण है, कि ज्ञानी और उदारचरित मनुष्य सबको अपना लेते हैं। उन्हें समस्त संसार अपना परिवार-सा दिखाई देने लगता है। इसीको विश्वप्रेम कहते हैं। यह प्रेमभावना बढ़ते बढ़ते अन्तमें प्रकृतिकी सीमामें जा पहुंचती है और बादको उसकी भी सीमा उल्लंघन कर परमात्मामें पहुंचकर उसीमें तन्मय हो जाती है। इसीको शास्त्रकारोंने मोक्ष या निर्वाण कहा है।

इस प्रकार मनुष्यकी प्रेम-लता स्वजनोंसे लेकर प्राणी मात्रपर अधिकार जमाती है। जितना ही इसे पोषण मिलता जाता है, उतना ही यह बढ़ती जाती है। पोषण न मिलनेसे जैसे वृक्ष और वन लताओंकी वृद्धि रुक जाती है, वैसे ही प्रेम भी परिमित सीमाके अन्दर ही रह जाता है। यही कारण है, कि किसीका प्रेम अपनी स्त्री ही तक, किसीका अपने स्वजनों ही तक और किसीका दस ही बीस मनुष्योंतक परिमित रहता है।

हम पहले ही कह चुके, कि बाल्यावस्थामें बच्चोंका प्रेम अपने माता-पिता, भाईबहन और स्वजनों तकही परिमित रहता है। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाता है, त्यों त्यों उसके प्रेम

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पात्र भी बढ़ते जाते हैं। दस पन्द्रह वर्षकी अवस्था होते न होते सैकड़ों मनुष्य इष्ट मित्रके रूपमें उसकी प्रेमलतिकाकी शीतल छायामें विश्राम करने लगते हैं। परन्तु इन सबोंसे मनुष्यको सन्तोष नहीं होता। यौवनावस्थामें पदापर्ण करते ही वह एक ऐसे प्रेमपात्रकी खोज करने लगता है, जो उसके सुख दुःख और जीवन मरणका संगी हो। जो विपत्तिमें धैर्य और शोकमें सान्त्वना दे सके। जो सुख और आनन्दके समय प्रेमोपचार द्वारा उसमें वृद्धि कर सके। ऐसा संगी प्राप्त करनेके लिये स्त्री और पुरुष दोनों का हृदय समान रूपसे व्याकुल हो उठता है। वे सतृष्ण नेत्रोंसे चारों ओर देखने और उसकी खोज करने लगते हैं। पराग-लोलुप मधुकर जैसे एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे फूल पर उड़ उड़ कर बैठता है, वैसे ही उनका चित्त भी अपने आसपासके जनसमुदायमें भटकने लगता है और जबतक कोई प्रेमपात्र नहीं मिलता तबतक अस्थिर बना रहता है।

विवाह होनेपर स्त्री और पुरुषोंकी इस प्रवृत्तिका अन्त आता है। स्त्रियोंको तो आरम्भसे ही इस बातकी शिक्षा दी जाती है, कि पति ही तुम्हारा जीवनधन, पतिही तुम्हारा उपाख्यदेव और पतिही तुम्हारा जीवनसर्वस्व है। उनके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

जीमें यह बात भलीभाँति बैठा दी जाती है, कि स्त्रीके लिये पति भिन्न और गति नहीं हैं, अतः विवाह होते ही उनकी समस्त चञ्चलता, समस्त भाव और समस्त प्रवृत्तियाँ चारों ओरसे सिमटकर पतिदेवके चरणोंमें केन्द्रीभूत हो जाती हैं। वे पर पुरुषकी ओर आँख उठाकर देखना भी पाप समझने लगती हैं, परन्तु पुरुषोंके सन्बन्धमें ऐसा नियम नहीं है। सदाचारी पुरुष निःसन्देह स्त्रियोंहीकी भाँति मनसा वाचा कर्मणा एक पत्नी-व्रत धारण करते हैं, परन्तु अधिकांश पुरुष ऐसा नहीं करते—शायद चेष्टा करने पर भी नहीं कर पाते।

इसका प्रधान कारण यह है, कि स्त्रियोंकी भाँति पुरुषोंके लिये कठिन नियमोंकी सृष्टि नहीं की गयी। जैसे स्त्रियोंको इस बातकी शिक्षा दी जाती है, कि उनके लिये पति भिन्न और गति नहीं हैं, उस तरह पुरुषोंको यह बात नहीं सुझाई जाती, कि एक पत्नी-व्रत-धारण ही पुरुषका एकमात्र कर्त्तव्य है। स्त्रियोंका कथन है, कि पुरुषोंने ही इन नियमोंकी सृष्टि की है अतः उन्होंने पक्षपातसे काम लिया है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं, कि विवाह होनेपर स्त्रियाँ जिस प्रकार अपना तनमन और सर्वस्व पतिदेवके चरणोंपर चढ़ा देती हैं, उसी प्रकार पुरुष समुदाय

-दाम्पत्य-विज्ञान-

स्त्रियोंके निकट आत्म-समर्पण नहीं करता । इससे कोई यह न समझे, कि संसारमें सर्वत्र ऐसा ही होता है—सभी पुरुष ऐसा ही करते हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अधिकांश पुरुष ऐसा ही करते हैं । यदि स्त्रियोंकी भाँति पुरुष मात्र अपना अपना हृदय अपनी हृदयेश्वरीको अर्पण कर दे, तो मृत्युलोक ही स्वर्गके रूपमें परिणत हो जाय और मनुष्य ही देवताओंके नामसे सम्बोधित होने लगे ।

परन्तु पुरुष समुदायसे वैसी आशा रखना दुराशा मात्र है । विवाह होनेके पहले ही उनका मन-चञ्चरीक जहाँ जहाँ मधुर रस देखता है, वहाँ वहाँ मन-स्थिति करने लगता है । स्त्रियोंको भाँति उन्हें एक ही पात्रको आत्म-समर्पण करनेकी शिक्षा नहीं मिलती, अतः विवाह होनेके बाद भी बहुतोंका यही क्रम चला करता है । फल यह होता है, कि बहुतोंकी स्त्रियाँ हताश हो पथभ्रष्ट हो जाती हैं और बहुतोंकी स्त्रियाँ प्रेम-भिक्षाके लिये अञ्चल फैलाये हुए ही मृत्युकी गोदमें आश्रय ग्रहण करती हैं ।

एकपत्नी-व्रतकी :शिक्षाका अभाव होनेके कारण जो पुरुष एक अभिन्न-हृदय संगी प्राप्त करनेके लिये व्याकुल रहते हैं, जो इस बातको सोचा करते हैं कि एक उपयुक्त साथी मिले तो चित्त शान्त हो, वे उसके मिल जानेपर

-दाम्पत्य-विज्ञान-

भी वैसे ही चञ्चल और अशान्त बने रहते हैं। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें एक पत्नी-व्रतकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रने इसका आदर्श भी सामने रक्खा था, परन्तु आज हमलोग वह सब भूल गये हैं। संसारमें आज एक भी ऐसा स्कूल नहीं, जहाँ पथभ्रष्ट पुरुषोंको विवाहिता स्त्रीके निकट आत्मसमर्पण करनेकी शिक्षा दी जाती हो। किसी सरकारकी कानून-पोथीमें ऐसा नियम नहीं, कि जो पुरुषोंकी इस निरङ्कुशतापर अङ्कुश रखता हो।

जैसे स्त्रियां विवाह होनेपर पतिको ही अपना जीवन सर्वस्व मान लेती हैं, वैसे ही पुरुषोंको भी चाहिये, कि अपनी अनर्गल प्रवृत्तिको एकदम रोककर अपनी हृदययेश्वरी में अपना चित्त केन्द्रीभूत करें। स्त्रियां पुरुषकी अर्धाङ्गिनी कही जाती हैं। पुरुषके प्रेमपर स्त्रीका जितना अधिकार है, उतना और किसीका नहीं। इसलिये पुरुषको विवाह होते ही चारों ओरसे अपने चित्तको खींच लेना चाहिये और जितना हो सके उतने प्रेमके साथ अपना हृदय उस हृदय-येश्वरीको सौंप देना चाहिये। उसे भली भांति समझ लेना चाहिये, कि जिस वस्तुका एक अधिकारी नियत हो चुका, उसे अब किसी दूसरेको देनेका हमें कोई अधिकार

- दाम्पत्य-विज्ञान -

नहीं। यही दाम्पत्य-प्रेम है। यही जीवनको सुखमय बनानेका मूल-मन्त्र है।

विवाह होतेही पुरुषमात्र शयनगृहमें पदार्पण करते हैं। लाख लज्जा और सङ्कोच होनेपर भी स्त्रियां उनके स्वागतके लिये तैयार रहती हैं। जिसके चरणोंपर अपना तनमन सब चढ़ा चुकीं, उसके स्वागतके लिये भला वे क्यों न तैयार रहेंगी? पतिको देखते ही, दासी भावसे वे उसे आत्मसमर्पण कर देती हैं। पतिदेव चाहे जो करे, वे कुछ न कहेंगी। धर्म और समाज-शास्त्र उन्हें कुछ कहने की आज्ञा भी नहीं देता।

भारतकी स्त्रियोंका यही हाल है। भला-बुरा, रोगी दोषी, मूर्ख किंवा व्यसनी चाहे जैसा पति हो, वे उसे आत्मसमर्पण करना अपना परम कर्त्तव्य समझती हैं। संसारकी और किसी जातिके नारी-समुदायमें यह भाव नहीं पाया जाता। भारतकी स्त्रियाँ अभी इस धर्मको निबाहे जाती हैं। उन्हींके पुण्यसे भारत भूमि अत्यंत स्थिर है, वरना पुरुषोंका अत्याचार इतना अधिक बढ़ गया है, कि एक बार ही उनके भारसे आक्रान्त हो भारत धरा रसातलको चली गई होती।

स्त्रियोंका आत्मसमर्पण और पुरुषोंकी उदासीनता

-दाम्पत्य-विज्ञान-

देखकर यही कहना पड़ता है। यद्यपि स्त्रियाँ प्रकटरूपसे कुछ भी नहीं कहतीं, परन्तु उनका हृदय पुरुषोंसे प्रतिफल की आशा अवश्य रखता है। नारी-हृदय चाहता है, कि मेरी ही भांति पुरुष भी आत्मसमर्पण कर दे और हम दोनों अभिन्न, अभेद, एवम् एक हृदय हों, हम दोनोंका द्वन्द्व मिट जाय।

पुरुषोंको चाहिये, कि नारी-हृदयकी इस अभिलाषाको अनुभव कर उसकी पूर्ति करें। आत्मसमर्पणका बदला आत्मसमर्पणसे दें। शयनगृहमें केवल पाशविक भावोंको न लेकर प्रेमकी डालीके साथ अपनी हृदयेश्वरीको मन-मन्दिरके सर्वोच्च सिंहासनपर बिठानेके लिये पदार्पण करें। जो लोग इस प्रकार प्रेमका प्रतिदान कर स्त्रियोंको सन्तुष्ट रखते हैं, वे इस संसारमें कभी मानसिक कष्टसे कष्टित नहीं होते। उनकी हृदयेश्वरी सदैव उनकी रक्षाके लिये प्रस्तुत रहती है।

जिसके हृदयमें प्रेम न हो, उसे केवल अपनी काम वासना चरितार्थ करनेके लिये शयनगृहमें पदार्पण न करना चाहिये। विना प्रेमकी काम प्रवृत्ति पाशविक अत्याचार है। पाशविक ही क्यों, उसे राक्षसी अत्याचार कहना चाहिये। पशु पक्षी तो भूलकर भी ऐसा अत्याचार नहीं

-दाम्पत्य-विज्ञान-

करते । प्रेमोपचार द्वारा भली भाँति अपनी मादाको रिझाने और उसकी कामवृत्ति जागरित करनेके बाद ही पशुपक्षी और कीट पतंग इस प्रवृत्तिमें पड़ते हैं । भ्रमरकी गुआर, कोयलकी कूक और पक्षियोंका कलरव, प्रेमोपचारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । पशुओंमें भी यही बात पायी जाती है । वे भी अपनी मादाको अनेक प्रकारसे खुश करनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु मनुष्य जातिका इतना अधःपतन हो गया है, कि उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती । लोग कामेच्छा जागरित होते ही स्त्रियोंपर अत्याचार कर बैठते हैं । उस समय वे यह नहीं सोचते, कि प्रेमोपचार द्वारा स्त्रीको प्रसन्न कर उसकी भी कामवासना जागरित कर देना परम कर्तव्य है । वे केवल अपनी ही मनस्तुष्टिका ध्यान रखते हैं । स्त्रीकी कामवासना जागरित हुई है या नहीं, उसकी इच्छा है या अनिच्छा यह जाननेकी वे चेष्टा नहीं करते । शायद आवश्यकता ही नहीं समझते । उन्हें केवल अपने कामसे काम । स्त्रियोंकी उन्हें कोई परवाह नहीं रहती । ऐसी दशामें कभी कभी स्त्रियोंको कामवासना जागरित होनेके पहले ही पुरुषोंकी क्रिया-समाप्ति हो जाती है । इसे हम अत्याचारके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ?

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वैज्ञानिकोंका कथन है, कि जिस समय स्त्री और पुरुष दोनोंकी कामवासना समान रूपसे जागरित हो, उसी समय उन्हें इस प्रवृत्तिमें पड़ना उचित है। यदि इस बातपर ध्यान नहीं दिया जाता, तो न आनन्द ही प्राप्त होता है, न अच्छी सन्तान ही उत्पन्न होती है। अतः पुरुषोंको चाहिये, कि काम-प्रवृत्तिमें पड़नेके पहले, विविध मनोरञ्जन, प्रेमालाप और ऐसे ही उपचारों द्वारा स्त्रियोंकी काम वृत्तिको जागरित एवम् उत्तेजित कर लें। यदि किसीको इसकी सूझ न हो, तो पशु और पक्षियोंसे उसे यह पाठ सीख लेना चाहिये। निःसन्देह, उन्नत और सभ्य कहानेवाले मनुष्य-को पशु और पक्षी इस विषयका पाठ पढ़ा सकते हैं।

घरमें घोंसला बनाकर रहनेवाली गौरैया नामक चिड़ियोंको देखिये। सारा दिन उनकी चहकसे घर गूँजा करता है। यही उनका प्रेमालाप है। बिना भलीभाँति प्रेमलाप और मनोरञ्जन किये वे काम प्रवृत्तिमें नहीं पड़तीं। कबूतरोंकी ओर देखिये। नर कबूतर नाचता है, गाता है और अनेक प्रकारसे मादाका मनोरञ्जन करता है। चमकदार सजीली गरदनको मरोड़ मरोड़ कर अनेक प्रकारसे उसे अपना सौन्दर्य प्रदर्शन करता है। वह स्वयं कामान्ध रहता है; परन्तु मादा जबतक उसपर मुग्ध नहीं

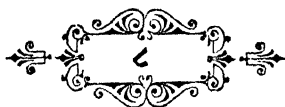
-दाम्पत्य- विज्ञान-

हो जाती, तब तक वह काम प्रवृत्तिमें नहीं पड़ता । मयूर-को देखिये । वर्षा ऋतुमें जब यह कामोन्मत्त होता है, तब अपनी पूँछको अर्धचन्द्रके आकारमें फैलाकर नाचने लगता है । उस समय उसकी शोभा अपूर्व मालूम होती है । मादा उसे देखकर मुग्ध हो जाती है । मयूर अधिकाधिक नृत्य और केकारव कर उसे कामान्ध बना देता है । जब दोनों समानरूपसे मत्त हो जाते हैं, तब काम-कौतुकमें प्रवृत्त होते हैं । पशुओंमें गाय भैंसको देखिये । मादाकी कामवृत्ति पहलेसे ही जागरित रहती है, तथापि नर उसे प्रेमोपचार द्वारा पहले प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता है । इस प्रकार सभी प्राणियोंमें सहवासके पहले प्रेमोपचार द्वारा प्रेमपात्रीके मनोरञ्जनका नियम विद्यमान है, परन्तु खेदकी बात है, कि मनुष्य-जातिमें यह बात बहुत कम पायी जाती है ।

सहवास चाहे आनन्द प्राप्तिके लिये किया जाय, चाहे सन्तानोत्पत्तिके लिये, उस समय स्त्री और पुरुष दोनोंके मनोभाव, दोनोंकी इच्छा, दोनोंकी कामपिपासा एक समान ही होनी चाहिये । इसके लिये पुरुषको भी स्त्रीके निकट आत्मसमर्पण करना होगा । केवल मौखिक बातोंसे काम न चलेगा । हृदय हृदयको पहचान लेता है । यदि पुरुष निष्कपट भावसे स्त्रियोंको आत्मसमर्पण करेंगे, तो स्त्रियाँ

-दाम्पत्य-विज्ञान-

भी वैसा ही :करगी । दोनों समान रूपसे प्रसन्न रहेंगे । दोनोंके मनोभाव और प्रवृत्तियां भी समान रहेंगीं और उसके फल स्वरूप दोनोंको समान आनन्दकी प्राप्ति होगी । याद रखिये, प्रेममें मरुभूमिको नन्दन काननके रूपमें परिणत कर देनेकी शक्ति है । वह दुःखी जीवनको सुखी बना सकता है । जिन दम्पतियोंमें परस्पर प्रेम नहीं, उनका जीवन ही व्यर्थ है । अतः प्रत्येक मनुष्यको अपना दाम्पत्य-जीवन प्रेममय बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये । प्रेम, हृदयके बदले हृदय देनेसे उत्पन्न होता है, किसी और उपाय द्वारा नहीं । पुरुष अपने पुरुषत्वके कारण स्त्री पर अत्याचार कर सकता है, परन्तु उसका प्रेम-सम्पादन नहीं कर सकता । स्त्रियां उसके स्वामित्व और अपने दासी-भावके कारण वह अत्याचार चुपचाप सहन कर सकती हैं, परन्तु आन्तरिक विषादको जलाञ्जलि नहीं दे सकतीं । इसलिये, जो लोग अपना दाम्पत्य-जीवन सुखमय बनाना चाहते हों, उन्हें स्त्रियोंके निकट निष्कपट भावसे आत्मसमर्पण करना चाहिये और न केवल काम प्रवृत्तिमें ही बल्कि समस्त प्रवृत्तियोंमें उन्हें अपने साथ लेकर चलना चाहिये । यदि इसके लिये वे तैयार न हों, तो यथोचित उपचार द्वारा उन्हें तैयार कर लेना पुरुषोंका प्रथम कर्तव्य है ।



सहवास किंवा गर्भाधान ।

विवाह हो जानेके बाद सभी दम्पति सहवास किंवा मैथुन-धर्ममें प्रवृत्त होते हैं। संसारमें आज-कल विलासिता बढ़ती जा रही है, अतः जो सहवास, केवल प्रजोत्पत्तिके लिये प्रयोजनीय था, वह आनन्द-वृद्धिके लिये नित्यका व्यापार हो पड़ा है। मनुष्य मात्रके हृदयमें यह अभिलाषा, क्षुधा और तृषाके समानही प्रबल रूपसे विद्यमान रहती है। साधन-सम्पन्न लोग क्षुधा और तृषाकी निवृत्तिके बाद इसीकी चिन्तामें निमग्न रहते हैं। न केवल मनुष्य, परन्तु पशु पक्षियों तकमें यही बात पायी जाती है। इसके लिये वे प्राणतक उत्सर्ग करनेको तैयार रहते हैं और करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ब्रह्मानन्दके बाद विषयानन्द ही एक ऐसा सुख है, जिसकी तुलना और किसी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सुखके साथ नहीं की जा सकती । लोग इसे अनिर्वचनीय सुख कहते हैं सो ठीक हो हैं । दुःखसे भरे हुए संसारमें इस क्षणिक सुखकी प्राप्तिके लिये प्राणी मात्रका व्याकुल हो उठना स्वाभाविक ही हैं । परन्तु प्राकृतिक नियमोंपर विचार करनेसे यह बात स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाती है, कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवासकी योजना की गयी है ।

यद्यपि हमलोग कामी मनुष्यको पशु और उसकी अनियमित काम प्रवृत्तिको पशुवृत्तिके नामसे सम्बोधित करते हैं परन्तु यह ठीक नहीं । मनुष्यकी अपेक्षा अभी पशु पक्षी प्राकृतिक नियमोंका पालन विशेष रूपसे करते हैं । उनके जीवनमें अभी कृत्रिमता और आडम्बरने प्रवेश भी नहीं कर पाया । वे अब भी नैसर्गिक जीवन व्यतीत करते हैं । उनमें देखा जाता है, कि नियत समय पर ही वे सम्भोग क्रियामें प्रवृत्त होते हैं । कुत्तोंमें ऐसा समय वर्षामें दो बार आता है—एक वसन्त और दूसरा हेमन्तमें । उसी समय उनका यह कार्य सम्पन्न होता है । गाय और भैंस आदि पशुओंमें जबतक पुनः गर्भ धारणकी योग्यता नहीं आ जाती, तबतक उनकी विषयेच्छा जागरित ही नहीं होती । उनमें जब संयोग होता है, तब केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ही होता है। अन्यान्य पशुओंमें भी प्रायः यही बात पायी जाती है।

परन्तु जो प्राणी सभ्यतामें जितना ही आगे बढ़ता गया है, उतनाही इस नियमकी अपेक्षा करता गया है। अन्य पशुओंकी अपेक्षा बन्दर अधिक सभ्य और चतुर पशु समझा जाता है, यहां तक, कि पाश्चात्य विज्ञान-विशारद मनुष्यकी उत्पत्ति उन्हींसे बताते हैं। शायद इसी लिये उनमें देखा जाता है, कि वे इस विषयमें समय आदिका बन्धन नहीं मानते। मनुष्य उनसे भी अधिक सम्य होनेका दावा रखता है, अतः वह उनसे भी गया बीता है। मानव-संसारमें यह कर्म अब स्वच्छन्दता पूर्वक किसी भी समय सम्पन्न होता है। इसके लिये समय तथा अन्यान्य बातोंके बन्धन होनेपर भी उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।

प्राचीन शास्त्रकारोंने केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवास करनेको आज्ञा दी है, परन्तु ज्यों ज्यों समय बीता जाता है, त्यों त्यों लोग उस नियमसे दूर होते जा रहे हैं। बात दरअसल यह है, कि लोग इस कामको अब आनन्द प्राप्तिका एक साधन समझते हैं, इसीलिये जब जब उन्हें अवसर मिलता है, तब तब वे इसका रसास्वादन करनेमें आगा पीछा नहीं सोचते हैं। फलतः आज चारों

-तमस्य- विज्ञान-

ओर हाहाकार मचा हुआ है। स्त्रियां मशीनका तरह बच्चे पर बच्चे प्रदान कर रही हैं। उन सबके प्रतिपालनकी शक्ति न होनेके कारण घर दारिद्र्यके अखाड़े हो रहे हैं और स्त्री एवम् पुरुष समुदाय अपना अपना स्वास्थ्य नष्ट कर मृत्यु-पथकी ओर अग्रसर हो रहा है।

सहवासके समय जो शारीरिक क्रियायें होती हैं, उनसे भी यही प्रमाणित होता है, कि इस कार्यका आयोजन केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही किया गया है। आनन्द प्राप्ति मनुष्यको उस कार्यमें प्रवृत्त करानेके लिये प्रलोभन मात्र है। यदि प्रकृतिने यह प्रलोभन न रक्खा होता, तो लोग इस घृणित और पाप पूर्ण प्रवृत्तिमें क्यों पड़ते? बड़े बड़े त्यागी और तपस्वी इसके लिये क्यों व्याकुल होते? सभी धमात्मा और पुण्यात्मा इससे दूर रहनेको चेष्टा करते। फल यह होता, कि ईश्वरके सृष्टि कार्यमें बड़ी भारी बाधा पड़ जाती। ऐसा न हो, इस लिये सन्तानोत्पत्तिके मार्गमें आनन्द प्राप्तिका प्रलोभन रक्खा गया है। इसके पीछे स्त्रियां गर्भधारण और प्रसवका कष्ट उठानेको तैयार रहती हैं। पुरुष भी न जाने कितनी कठिनाइयोंका सामना करते हैं, परन्तु इस कार्यसे विमुख नहीं होते। इन सब बातों-पर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि लोग आनन्द पूर्वक

-दम्पत्य- विज्ञान-

सहवास द्वारा सन्तानोत्पत्ति करें—यही विधिका विधान है। इसीलिये सहवासकी योजना की गयी है।

नव दम्पतियोंको चाहिये, कि इन सब बातोंपर भली भाँति विचार करनेके बाद ही वे इस प्रवृत्तिमें पड़ें। सहवास करने पर सन्तानोत्पत्ति होते देर नहीं लगती। केवल एक ही बारके संयोगसे भी सन्तान उत्पन्न हो सकती हैं। सन्तानका न उत्पन्न होना ही आश्चर्यकी बात है, उत्पन्न होना तो सर्वथा स्वाभाविक ही है। अतः दम्पतियोंको इस प्रवृत्तिमें पड़नेके पहले यह भलीभाँति सोच लेना चाहिये, कि वे यह भार उठानेके लिये तैयार हैं, या नहीं। यदि मातामें गर्भधारण और प्रसव-वेदना सहन करनेकी शक्ति न हो, तो उसे भूल कर भी इस क्षणिक आनन्दके प्रलोभनमें न पड़ना चाहिये। यदि पितामें भावी सन्तानके प्रतिपालनकी शक्ति न हो, उसे पढ़ा लिखा कर योग्य बनानेका सामर्थ्य न हो, तो उसे भी इस विपत्तिको निमन्त्रण न देना चाहिये। जिनमें यह सब सहने और करनेकी शक्ति हो, वे आनन्दपूर्वक इस कार्यमें प्रवृत्त हो सकते हैं।

सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका प्रधान उद्देश है, अतः सहवासके समय कौन कौन सी शारीरिक घटनाये घटती

-दम्पत्य-विज्ञान-

हैं और उनके द्वारा सन्तानोत्पत्तिका कार्य किस प्रकार सम्पादित होता है, यह सब दम्पतियोंके लिये जान रखना परमावश्यक है। इससे न केवल उन्हें अपना कर्तव्य ही स्थिर करनेमें सहायता मिलेगी, बल्कि जरा जरासी भूलके कारण कभी कभी जो महान कष्ट भोगने पड़ते हैं, उनसे भी वे त्राण पा सकेंगे। यद्यपि यह विषय चिकित्सा-शास्त्रके अन्तर्गत है और इसकी बारीकियां प्रत्येक मनुष्यकी समझमें भी नहीं आ सकतीं, तथापि उन मोटी मोटी बातोंका उल्लेख कर देना हम उचित समझते हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त करना सबके लिये परमावश्यक है।

यह तो सभी लोग जानते हैं, कि पुरुषोंके शरीरका सारभूत पदार्थ वीर्य और स्त्रियोंके शरीरका रज कहलाता है। स्त्रियोंके गुल्फाङ्गमें बाह्य मुखसे पांच छः अङ्गुलकी दूरीपर अमरुदके आकारका गर्भाशय होता है। गर्भाशय की दोनों ओर एक एक अंडाशय किंवा डिम्बकोष होता है। उसका आकार बदामके समान होता है। जब स्त्रियां ऋतुमती होती हैं, तब एक डिम्ब किंवा अण्डा अण्डाशयसे निकल कर गर्भाशयमें आ जाता है। यह डिम्ब सजीव होता है। इसीके साथ पुरुषके वीर्यका संयोग होनेपर गर्भ-स्थिति होती है।

- दाम्पत्य-विज्ञान-

जिस प्रकार दूधमें घी मिला रहता है, उसी तरह शरीरके रक्तमें वीर्य मिला रहता है। जब पुरुष काम प्रवृत्तिमें प्रवृत्त होते हैं, तब जैसे दूधको मथनेसे मक्खन निकलता है, उसी तरह वीर्य प्रस्तुत होता है। यह काम अण्डकोष तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियाँ और यन्त्रोंद्वारा सम्पन्न होता है। स्त्रियोंके डिम्बकी भांति पुरुषोंके वीर्यमें भी सजीव पदार्थ होता है। उसे शुक्राणु किंवा शुक्रकीट कहते हैं। इन्हीं शुक्रकीट और डिम्बोंके संयोगसे गर्भस्थिति होती है।

जो लोग सदाचारी और संयमी होते हैं, उनके शुक्रकीट निरोग और दृष्टपुष्ट होते हैं, किन्तु जो दुराचारी और रोगी होते हैं, उनके शुक्रकीट निस्तेज और दुर्बल होते हैं। गर्भ-सञ्चार करनेकी शक्ति निरोग और दृष्टपुष्ट शुक्रकीटोंमें ही होती है। दुर्बल शुक्रकीटों द्वारा गर्भ-सञ्चार होनेपर सन्तान भी दुर्बल ही होती है। प्रमेह, उपदंश और अण्डकोष सम्बन्धी व्याधियाँ तथा हस्तमैथुन प्रभृति दुर्व्यसनोके कारण कभी कभी इन शुक्रकीटोंका सर्वथा अभाव भी हो जाता है। उस दशामें फिर गर्भस्थिति नहीं होती।

यहां पर हमारे पाठकोंको रज और वीर्य—इन दोनोंका अन्तर भलीभाँति समझ लेना चाहिये। स्त्रियोंके डिम्ब

- दाम्पत्य - विज्ञान -

और रजकी तरह पुरुषोंके कीट और वीर्य पृथक् पृथक् नहीं होते। पुरुषके वीर्यहीमें गर्भ सञ्चार करनेवाला सजीव पदार्थ मिला रहता है। परन्तु स्त्रियोंके यह दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न होते हैं। उनके रजमें सजीव पदार्थ न हानेके कारण उससे वीर्यका संयोग होने पर भी गर्भ-सञ्चार नहीं होता। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि स्त्रियोंके ऋतुमती होनेपर डिम्बकोपसे जो डिम्ब गर्भाशयमें आता है, वह कुछ ही दिनतक वहाँ जीवित रहता है। यदि उसी समय पुरुष सहवास करता है और डिम्ब तथा शुक्रकीटका मेल हो जाता है, तो गर्भास्थिति अवश्य हो जाती है। अन्यथा सहवास करने पर भी गर्भ-सञ्चार नहीं होता।

नवदम्पतियोंको चाहिये, कि इन सब बातोंको भलीभांति समझ लें और यदि सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा हो; तो केवल उसी समय और उसी दशामें सहवास करें, जब गर्भसञ्चार होनेकी सम्भावना हो। जो लोग इन बातोंका विचार न कर, अनियमित रूपसे स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करते हैं वे असमयमें ही अपना यौवन और स्वास्थ्य खो बैठते हैं। उनका घर दुर्बल और अल्पजीवी सन्तानोंसे भर जाता है और नाना प्रकारके कष्टोंके कारण उन्हें अपना जीवन भार मालूम होने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं,

-दम्पत्य-विज्ञान-

कि पशुओंसे भी गये बीते मनुष्य यदि पहलेसे ही इन सब बातों पर विचार करें और अनियमित संयोग द्वारा होनेवाली हानियोंको सम्भलें, तो वे क्षणिक आनन्दको निस्पृहताकी दृष्टिसे देख सकते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब वे इस विषयके रहस्योंको हृदयङ्गम कर नियमानुसार आचरण करनेका निश्चय कर। इस बातके लिये उन्हें बड़ा भारी त्याग करना होगा—अपनी विलास प्रियताको जलाञ्जलि देनी होगी और तदर्थ अपने मनको सुदृढ़ एवम् उन्नत बनाना होगा। इससे कोई यह न समझे, कि सहवास कोई निन्द्य काम है और उसका नाम लेना भी पाप है। यह तो एक परम पवित्र कर्त्तव्य है। इसकी गार्हस्थ्य-धर्ममें गणना की गयी है, परन्तु आजकल यह जिस रूपमें सम्पन्न होता है उस रूपमें नहीं। उसमें और इसमें बड़ा अन्तर है। दम्पतियोंके हृदयमें यदि सन्तानोत्पत्तिकी पवित्र भावना विद्यमान हो, तो उनका सहवास पुण्य है और यदि पाशविक दुर्वासना छिपी हो, तो पाप है। गार्हस्थ्य धर्म केवल अपनीही स्त्रीके साथ, ऋतुकालमें, निश्चित तिथि और निर्धारित समय पर ही यह काम करनेकी सम्मति प्रदान करता है। अगले अध्यायोंमें हम इन्हीं सब बातोंपर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।



सहवास करनेवालोंकी अवस्था



हम पहले ही कह चुके, कि सहवासका एकमात्र उद्देश्य है सन्तानोत्पत्ति, परन्तु सम्प्रति लोगोंने इस बातको भुला दिया है। अब इसका प्रधान उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति ही समझा जाता है। वैसा करते करते अनायास ही किसी दिन गर्भ-स्थिति हो जाती है और आनन्दमें बाधा पड़ जाती है। जो लोग कुछ समझदार होते हैं, वे कुछ समयके लिये आत्मसंयम करते हैं और जिन्हें अपने या अपनी स्त्रीके स्वास्थ्यकी परवाह नहीं होती, वे अन्ततक इस कर्मसे विमुक्त नहीं होते। यथा समय स्त्रियाँ बच्चोंको जन्म देती हैं और जन्म देनेके बाद कुछ ही दिनोंमें पुनः वही क्रम चलने लगता है। इस प्रकार लोगोंको अनायास ही सन्तानोंकी प्राप्ति होती है। वे

-दम्पत्य-विज्ञान-

इसके लिये विशेष रूपसे कोई चेष्टा नहीं करते, बल्कि गर्भ स्थितिको अपने आनन्दमें बाधा स्वरूप समझ, उन्हें कुछ खेद और दुःख होता है।

इस प्रकार जिन्होंने सहवासको एक प्रकारका विलास और स्त्रीको विलासकी सामग्री समझ रक्खा है, वे किसी बातका विचार ही नहीं करते। न उन्हें ऋतुकालसे मतलब, न समय कुसमयका विचार। जिस समय हृदयमें तरङ्ग उठे, वही उनके लिये ऋतुकाल है। बल्कि उनका उद्देश्य उलटा रहता है, अतः वे ऋतुकालमें सहवास करनेसे डरते हैं, कि कहीं गर्भ न रह जाय और आनन्दमें बाधा न पड़ जाय। परन्तु सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका प्रधान उद्देश्य है, इसलिये ऋतुकाल, समय असमय और अवस्थादि बातों पर भली भाँति विचार करना चाहिये। इन बातों पर ध्यान न रखनेसे न केवल हीन और अल्पजीवी सन्तान ही उत्पन्न होती है, बल्कि दम्पतियोंका स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। स्वास्थ्य नष्ट हो जाने पर जो लोग केवल आनन्द प्राप्ति हीके लिये सहवास करते हैं, उन्हें आनन्द भी कैसे प्राप्त हो सकता है। इसीलिये यह बातें सब लोगोंके लिये एक समान उपयोगी हैं और सबको इनका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

-दम्पत्य-विज्ञान-

वैद्यक शास्त्रके महान् आचार्य सुश्रुत मुनिका कथन है, कि २५ वर्षका पुरुष सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ मैथुन कर सकता है। उस समय दोनों पूर्ण यौवन प्राप्त करते हैं। दोनोंका वीर्य परिपक्व हो जाता है। दोनोंके अङ्ग परिपुष्ट एवम् दृढ़ हो जाते हैं। दोनोंका बल और वीर्य एक समान होता है, अतः दृष्टपुष्ट और बलिष्ट सन्तान उत्पन्न होती है। सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी स्त्रीके साथ यदि पच्चीस वर्षसे कम अवस्थावाला पुरुष सहवास करता है, तो बच्चे गर्भहीमें मर जाते हैं। यदि ऐसा न हुआ और किसी प्रकार उन्होंने जन्म ग्रहण किया, तो वे दीर्घजीवी नहीं होते और आजीवन रोगी बने रहते हैं। इसलिये छोटी अवस्थाकी स्त्रीके साथ भूल कर भी सहवास न करना चाहिये।*

दुर्भाग्यवश हमारे भारतवर्षमें बाल विवाहकी प्रथा प्रचलित है। किसी किसी जातिमें तो जन्म होते ही

* पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
 समत्वा गत वीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषग् ॥
 उन षोडश वर्षायाम प्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
 यद्याधत्ते पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते ॥
 आतो वा न चिरजीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
 तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

—सुश्रुत संहिता

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बच्चोंका विवाह कर दिया जाता है। केवल संयुक्त प्रान्तकी ही जनसंख्याका व्यौरा देखनेसे पता चलता है, कि सन १९२१ में वहाँ २०१३०८१४ हिन्दुओंमें ११७८७ पुरुष ऐसे थे, जिनकी अवस्था पांच वर्षसे अधिक नहीं थी, परन्तु वे विवाह बन्धनमें बांध दिये गये थे। इसी भांति १८२७४८१० स्त्रियोंमेंसे पांच वर्षकी आयुतककी १६३५५ स्त्रियाँ विवाहिता थीं। यही क्यों, इन अभागोंमें ५२० पुरुष और ४३४ स्त्रियाँ ऐसी थीं, जिनके पापी माता पिता एक वर्षकी आयु होनेके पहले ही विवाह संस्कारकी आड़में अपने उन भोले भाले बच्चोंके जीवनकी हत्या कर चुके थे। यह केवल संयुक्त प्रांतका हाल है। सन १९२१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार समस्त भारतके विवाहित स्त्री पुरुषोंकी संख्या इस प्रकार है:—

आयुवर्ष	पुरुष	स्त्रियाँ
१ से कम	६६२१	६०६६
१ से २	३६८७	११५६५
२ से ३	१६४८४	३२१६७
३ से ४	२८६१५	६०७५५
४ से ५	५१६७७	१८४८५०
५ से १०	७५७३०५	२०१६६८७

- दम्पत्य- विज्ञान -

आयुवर्ष	पुरुष	स्त्रियाँ
१० से १५	२३४४०६६	६३३०२०७
१५ से २०	४०७७४००	६६३५३४०
२० से २५	७७८६६६७	११८४०६२०
२५ से ३०	१०५५४२८०	११७१७६६४
३० से ३५	११०४६३२६	१०१६७७२१
३५ से ४०	८७२६६३६	६३०१२४६
४० से ४५	८३०६३५०	५६६६१६०
४५ से ५०	५१५३३३८३	२७७६७५६
५० से ५५	५३६४६५३	२४८१४५५
५५ से ६०	२२२४१७५	६०८६५६
६० से ६५	२६५३४६०	८८३०२६
६५ से ७०	८४५३६६	२५१५४६
७० से अधिक	१४६७५६७	३५०६७८

इन अंकोंको देखनेसे ज्ञात होता है, कि भारतमें पच्चीस वर्षसे कम अवस्थाके लाखों पुरुष और सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी लाखों स्त्रियाँ ऐसी हैं जो विवाहके बन्धनमें जकड़ी जा चुकी हैं। यद्यपि यह ठीक है कि, विवाह होनेके साथही सब लोग सहवास नहीं करने लगते। हम मानते हैं, कि द्विरागमन आदि बहुत सी ऐसी प्रथायें

-दम्पत्य-विज्ञान-

प्रचलित हैं, जो नव दम्पतियोंके सम्मिलनमें बाधा देती हैं, तथापि यह निर्विवाद है, कि विवाह होनेपर सबके लिये सहवासका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। उस दशामें यदि कोई सहवास करता है, तो उसे लोग बुरा नहीं कहते। बच्चोंका विवाह कर देना उन्हें सहवासके लिये आज्ञा दे देनेके समान है। एक बार आज्ञा दे देनेपर फिर क्या इस बातकी आशा रखी जा सकती है, कि वे इस प्रवृत्तिमें न पड़ेंगे? बहुत छोटी अवस्था वाले दम्पतियोंके सम्बन्धमें हम कोई बात नहीं कह सकते, परन्तु बारहसे लेकर पन्द्रह वर्षतककी विवाहिता स्त्रियाँ और पन्द्रहसे लेकर बीस बार्स वर्षतकके विवाहित पुरुषोंके सम्बन्धमें यह कौन कह सकता है, कि वे इन्द्रिय-निग्रह करते होंगे?

उपरोक्त अंकोंसे पता चलता है, कि सन् १६२१ में यहाँ दससे पन्द्रह वर्षतककी ६३३०२०७ स्त्रियाँ विवाहिता थीं। सम्भव है, कि इनमेंसे दससे लेकर बारह वर्षतककी स्त्रियाँ छोटी अवस्थाके कारण सहवास न करती हों। शेषके सम्बन्धमें पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। वैद्यक शास्त्र इस अवस्थामें स्त्रियोंको गर्भ धारणके लिये अयोग्य बतलाता है, परन्तु हमारे देशका पुरुष समुदाय ऐसा संयमी नहीं है, कि विवाह हो जानेके बाद भी स्त्रियोंसे

--दाम्पत्य-विज्ञान--

छेड़ न करे। मिसिस ई० बी० डफीके मतानुसार शायद पचास पुरुषोंमें एक भी ऐसा पुरुष न मिलेगा, जो अपने विवाहके प्रथम वर्षमें अत्यंत स्त्री-सहवास न करता हो। हमलोग रात दिन यही देखते भी हैं। सर्वत्र यही होता है। सब लोग ऐसा ही करते हैं। क्या स्त्री और क्या पुरुष कोई भी अपनी अवस्थाका विचार नहीं करता। ऐसी दशामें स्वास्थ्यकी हानि, अल्पायु रोगी और दुर्बल सन्तानोंकी वृद्धि, और उनके प्रतिपालनकी चिन्ताके अतिरिक्त और कोई सुफल मिल ही कैसे सकता है ?

हमलोग अपने अनुभवसे भी इन बातोंपर विचार कर सकते हैं। यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि विवाह होनेके बाद शीघ्र ही भारतीय ललनायें माताके रूपमें परिणत हो जाती हैं और जिस अवस्थामें उन्हें गर्भधारण करना चाहिये उसके पहले ही दो चार बच्चे उनकी गोदमें आ पड़ते हैं। सन्तानोंकी असमयमें ही आनेवाली इस बाढ़के कारण न देशका ही उपकार होता है, न माता पिताओंका ही श्रेय होता है। ऐसे बच्चे बहुधा जन्मते ही मर जाते हैं और यदि जीवित रहते हैं, तो आजीवन रोगी बने रहते हैं। बालकोंकी मृत्यु संख्या दिनपर दिन जो भयंकर रूप धारण करती जा रही है, उसका यही मात्र कारण है। सब

-दाम्पत्य-विज्ञान-

१९२१ की गणनानुसार बंगालमें उसी साल १३०१००१ बच्चे उत्पन्न हुए थे, जिनमेंसे २६८१६२ जन्मते ही मृत्यु मुखमें प्रवेश कर गये। यही दशा समस्त भारतकी है। भारतवासियोंका बड़ेही भयंकर रूपसे हास हो रहा है और बड़ी शीघ्रताके साथ वे विनाशकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

एक तो परम्परागत दुर्बलता, दूसरे ब्रह्मचर्यका अभाव और तिसपर छोटी अवस्थामें विवाह ! ऐसी दशामें बच्चोंकी मृत्यु अवश्यम्भावी हैं। इन्हीं सब कारणोंसे बाल विधवाओंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। किस अवस्थामें विवाह और किस अवस्थामें सहवास करना उचित है—इस विषयका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर, लोग तदनुसार आचरण करें तो दीर्घायुषी सन्तान लाभ कर सकते हैं। यदि वह सन्तान भी इस तरह करे, तो उसकी सन्तान भी दीर्घायुषी हो सकती है और इसी क्रम द्वारा भारतवासी पुनः दीर्घजीवन लाभ कर सकते हैं।

भलीभाँति विचार करनेपर मालूम होता है, कि दाम्पत्य-विज्ञानको न जाननेके कारण ही लोग दिन प्रतिदिन अल्प जीवी होते चले जा रहे हैं। यदि वे इन बातोंको समझने लगे तो भूलकर भी ऐसा न करें, जिसके कारण दो दाँतकी स्त्रियोंको कलपते छोड़कर उन्हें अकालमें ही मृत्यु

-दाम्पत्य- विज्ञान-

मु. में प्रवेश करना पड़ता है। देखिये इस अज्ञानताके कारण कितनी अवलाओंको वैधव्य-जीवन व्यतीत करना पड़ता है। सन् १९११ की मनुष्य गणनानुसार समस्त भारतकी बाल विधवाओंके अंक नीचे दिये जाते हैं:—

आयुवर्ष	विवाहिता	विधवा
१ से कम	१३२१२	१०१४
१ से २	१७७५३	८५६
२ से ३	४६७८७	१८०७
३ से ४	८७५०८	४७५३
४ से ५	१३४१०५	६२७३
५ से १०	२२७६७७८	६४२७०
१० से १५	६५५५४२४	२२३०४२

बतलाइये, पन्द्रह वर्षकी आयु। युवावस्था ! निरा-
शामय भविष्य ! पापी संसार ! क्या परिणाम होगा ?
जिस देशके वक्षस्थलपर सहस्राधिक बालिकायें वैधव्य भोग
रही हों और जिन्हें यह पता न हो, कि कब विवाह हुआ और
कब उनका भाग्य फूट गया, उस देशकी जितनी दुर्दशा हो
उतनीही कम है। अज्ञानावस्थामें विवाहके नामपर जो कुछ
हो गया, उसी अपराधके कारण उन निरपराध बालिकाओं-
को संसारके समस्त सुखोंसे वञ्चित रहकर—हमारे भाग्यमें

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वेधव्य ही बदा था—बस यही कहते हुए अपना जल्थी बिताना पड़ेगा । निःसन्देह आज हिन्दू समाज इन्हीं बाल विधवाओंके उष्ण उच्छ्वाससे दग्ध हुआ जा रहा है !

भारतवासियोंकी आयु भी दिन प्रति दिन घटती जा रही है । न्युज़ीलैण्डकी ६०, आस्ट्रेलियाकी ५५, अमेरिका और इङ्ग्लैण्डकी ४६, जर्मनीकी ४५ और जापानियोंकी औसत आयु जहां ४३ वर्षकी है, वहां एक भारतवासीकी आयु २२ ही वर्षकी निकलती है । सन् १९०१ में जहाँ वह २४ वर्षकी थी वहां सन् १९११ में २३ और १९२१ में २२ वर्षकी रा गयी है । जीवनी शक्तिके इस ह्रासका कारण भी ब्रह्मचर्यवाग्न अभाव, बाल विवाह और असमयका सहवास ही है ।

हमारे कहनेका तात्पर्य यह है, कि १६ वर्षसे कम आयुकी स्त्री और २५ वर्षसे कम आयुवाले पुरुषको कदापि सहवास न करना चाहिये । हमारा धर्मशास्त्र और विज्ञान इसके लिये जरा भी सम्मति प्रदान नहीं करता । आधुनिक विद्वानोंकी भी यही राय है । अतः जिन्हें सुन्दर, सुशील और दीर्घायुषी सन्तान उत्पन्न करनी हो, जो अपना स्वास्थ्य और यौवन चिरकाल तक स्थिर रखना चाहते हों, उन्हें कामवृत्तिमें पड़नेके पहले अपनी अवस्थाका विचार अवश्य कर लेना चाहिये ।



चतुर्काल ।



गत अध्यायमें हम बतला चुके, कि स्त्री समागमका एकमात्र उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही है और होना चाहिये, किन्तु आनन्द-प्राप्ति ही उसका इस समय प्रधान उद्देश्य हो रहा है । सन्तानोत्पत्तिके लिये जो सहवास किया जाता है, उसे शास्त्रकारोंने धर्म और कर्त्तव्य कर्म बतलाया है और जो केवल मनोरञ्जनके लिये किया जाता है, उसे निन्द्य और पापरूप बतलाया है । वह निन्द्य इसलिये है, कि उससे क्षणिक सुखकी प्राप्तिके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता । वैज्ञानिकोंका कथन है, कि भुक्त अन्नका एक मासमें वीर्य तैयार होता है और एक बिन्दु वीर्य चालीस बुन्द रक्तके बराबर होता है । जो लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये सहवास करते हैं, उन्हें तो वीर्यपात जनित हानिका एक प्रकारसे

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बदला मिल जाता है, परन्तु जो लोग क्षणिक सुखके लिये यह कार्य करते हैं, वे सोलहो आने घाटेमें रहते हैं। उन्हें न केवल वीर्यहीकी हानि उठानी पड़ती है, बल्कि स्वास्थ्य और यौवनसे भी सदाके लिये हाथ धोने पड़ते हैं। इस-लिये चतुर पुरुषोंको सन्तानोत्पत्ति भिन्न किसी दूसरे उद्देश्यसे भूल कर भी स्त्री-संग न करना चाहिये।

स्त्रियाँ तीसो दिन गर्भधारण नहीं कर सकतीं। हिन्दू वैज्ञानिकोंके मतानुसार ऋतुमती होनेके बाद केवल सोलह ही दिनतक उनका गर्भद्वार खुला रहता है। इसके बाद वह बन्द हो जाता है। पाश्चात्य विद्वान इस बातको नहीं मानते। वे अनेक उदाहरणों द्वारा यह बात प्रमाणित करते हैं, कि ऋतुमती होनेके बीस या बाईस दिन बाद भी स्त्रियाँ गर्भवती हो सकती हैं। उनका कथन है, कि स्त्रियोंके ऋतुमती होनेपर वह डिम्ब किंवा वीज, जिसके साथ पुरुषके वीर्यका संयोग होनेपर गर्भ संचार होता है, अपने स्थानसे निर्गत हो जरायुमें आता है, और वह वहाँ जबतक जीवित रहता है, तब तक गर्भ सञ्चार हो सकता है। हम उनके इस कथनको स्वीकार करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि जबतक डिम्ब जीवित रहता है, तभी तक गर्भ सञ्चार होता है, परन्तु डिम्ब कबतक जीवित

-दाम्पत्य- विज्ञान-

रहते हैं, इस बातका ठीक ठीक पता अबतक कोई नहीं लगा सका । अधिकांश विद्वानोंका मत है, कि यह डिम्ब बहुधा आठ दश दिन तक ही जीवित रहता है । यहां प्राच्य और पाश्चात्य सिद्धान्तोंका एक तरहसे मेल हो जाता है । हम अपने ही शास्त्रोंकी बातको प्राधान्य दे, मान ले सकते हैं, कि स्त्रियां रजोदर्शनके दिनसे सोलह दिन तक ही गर्भ-धारण कर सकती हैं । इसी सोलह दिनके समयको हमने ऋतुकाल कहा है । इसके बाद यदि स्त्रियां गर्भ धारण कर सकती हैं, तो वह केवल अपवाद है, साधारण नियम नहीं ।

ऋतुकाल पर सब लोगोंको समान रूपसे ध्यान देना चाहिये । जो लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये सहवास करें, उन्हें इस बातको समझ लेना चाहिये, कि किस दिन सहवास करनेसे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है और जो लोग आनन्द प्राप्तिके लिये सहवास करें उन्हें यह इसलिये जान लेना चाहिये जिससे गर्भ सञ्चार न हो, और यदि हो तो किसी अच्छे दिन हो, सित्तससे हीन सन्तान न उत्पन्न हो । ऋतुकालके सम्बन्धमें मोक्ष भगवानने लिखा है कि:—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां । रात्रयः षोडश स्मृताः ।

चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः । सदि गर्हितैः ॥

- दाम्पत्य-विज्ञान -

तासामाद्याथ तत्रस्तु निहन्दितादशी च या ।

त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।

तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त वे स्त्रियम् ॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुके स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।

समेऽपुमान्पुं स्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥

अर्थात् पहली चार दिवा रात्रियां लेकर स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतुकाल १६ रात्रियाँ है। इनमें पहली चार रात्रियाँ व एकादश और त्रयोदश रात्रियाँ—यह छः निषिद्ध हैं। शेष दस रात्रियाँ स्त्री-गमनके लिये प्रशस्त हैं। इन दसमेंसे छठी, आठवीं, दसवीं, आदि युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे पुत्र होता है और पाँचवीं, सातवीं, नवीं आदि अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या होती है, इसलिये पुत्रके लिये ऋतुकालकी युग्म रात्रियोंमें ही गमनका विधान किया गया है। अयुग्म रात्रि होने पर भी पुरुषका वीर्य अधिक होने पर पुत्र होता है और युग्म रात्रि होने पर भी रजके आधिक्यसे कन्या उत्पन्न होती है। यदि कहीं दोनों एक समान होते हैं, तो या तो नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है या यमज कन्या पुत्र (जोड़ बच्चे) उत्पन्न होते हैं और यदि रज और वीर्य दोनोंकी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कमी हुई या दोनों निस्तेज हुए तो गर्भ सञ्चार ही नहीं होता ।

ऋतुमती किंवा रजस्वला स्त्रीके साथ, रजोदर्शनके प्रथम तीन दिन सहवास करना मना है । इन दिनोंमें सहवास करने पर बहुधा स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता, क्योंकि पुरुषका वीर्य ठिकाने पर न पहुँच कर रक्तस्रावके साथ बाहर निकल जाता है और यदि गर्भ रह जाता है, तो हीन सन्तान उत्पन्न होती है । इन दिनोंमें कोई उनका सङ्ग न करे, इसलिये शास्त्रकारोंने उन्हें चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी तुल्या अशुद्धा बतलाया है ।* चौथे दिन स्त्री शुद्ध होती है । उस दिन सहवास किया जा सकता है, परन्तु शास्त्रकारोंने उस दिनको भी अच्छा नहीं बतलाया है । पाँचवें दिनसे सोलहवें दिनतक सानन्द यह कार्य किया जा सकता है । चौथे तथा छठे दिनके पुत्र तथा पाँचवें

* प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।

तृतीये रजकी प्राक्ता चतुर्थेऽहनि शुष्यति ॥

अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिवस स्त्री चाण्डाली तुल्या, द्वितीय दिवस ब्रह्मघातिनी तुल्या, और तृतीय दिवस रजकी तुल्या अशुद्धा रहती है । चौथे दिन शुद्ध होती है ।

—पराशर संहिता ।

-दम्पत्य-विज्ञान-

और सातवें दिनकी कन्यायें भली नहीं होती, अतः इन तिथियोंमें भी यथा-सम्भव आत्मसंयमसे काम लेना चाहिये। किस रात्रिमें सहवाससे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है, यह जाननेके लिये निम्नलिखित विवरण पढ़िये।

पहले तीन दिन—रजोदर्शनके समय तीन दिनतक स्त्री पुरुषोंको भूल कर भी सहवास न करना चाहिये। इससे पुरुषकी जीवनी शक्ति और स्वास्थ्य नष्ट होता है और स्त्रीके शूल आदि बीमारियां हो जाती हैं। यदि सहवास किया जाता है, तो बहुधा गर्भ ही नहीं रहता और यदि रहता है तो पहले और दूसरे दिनके सहवाससे उत्पन्न होनेवाली सन्तान गर्भ किंवा बचपनमें ही मर जाती है तथा तीसरे दिनके सहवाससे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह आजन्म रोगी बनी रहती है। इसलिये बुद्धिमान दम्पतियोंको रजोदर्शनके समय एक दूसरेको स्पर्श भी न करना चाहिये।

चौथा दिन—सहवास किया जा सकता है, परन्तु शास्त्रकारोंने इसे भी निषिद्ध कहा है। इसका कारण यह है, कि बहुतेरी स्त्रियोंका रक्तस्राव इस दिन तक सम्पूर्ण रूपसे बन्द नहीं होता। इस दिन सहवास करने पर बहुधा एकसे अधिक बच्चे एक साथ उत्पन्न होते हैं और जो उत्पन्न होते हैं वे आजन्म दरिद्री बने रहते हैं।

—दाम्पत्य-विज्ञान—

- पाँचवाँ दिन—कुलटा कन्या उत्पन्न होती है ।
छठा दिन—मिश्रक और दरिद्र पुत्र उत्पन्न होता है ।
सातवाँ दिन—बहुधा कोई सन्तान नहीं उत्पन्न होती
और यदि होती है, तो कुलकलंकिनी कन्या उत्पन्न होती है ।
आठवाँ दिन—भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है ।
नवाँ दिन—शुभाचरणवाली कन्या उत्पन्न होती है ।
दशवाँ दिन—श्रेष्ठ और शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न होता है ।
ग्यारहवाँ दिन—साधारण कन्या उत्पन्न होती है ।
बारहवाँ दिन—जितेन्द्रिय पुत्र उत्पन्न होता है ।
तेरहवाँ दिन—साधारण पुत्र किंवा पुत्री उत्पन्न होती हैं ।
चौदहवाँ दिन—भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है ।
पन्द्रहवाँ दिन—धर्माचारिणी कन्या उत्पन्न होती है ।
सोलहवाँ दिन—महा बलवान पुत्र उत्पन्न होता है ।

उत्तम सन्तानको इच्छा रखनेवालोंको इनके अतिरिक्त कतिपय और नियमोंपर भी ध्यान रखना चाहिये । पूर्णिमा अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी और संक्रान्तिको पर्वदिन कहते हैं, अतः इन दिनोंमें भी सहवास करना मना है । रविवारका दिन भी निषिद्ध है । जिस दिन कहीं जाना हो उस दिन भी स्त्री-समागम न करना चाहिये । मघा और मूल नक्षत्रमें सहवास करनेवालोंकी आयु क्षीण

-दाम्पत्य-विज्ञान-

होती है। ज्येष्ठा, अश्लेषा, रेवती, कृत्तिका; अश्विनी और तीनों उतरा नक्षत्र भी निन्दित हैं। अमावस्याके दिन स्त्रियोंके शरीरमें रसकी विशेषता रहती है, अतः उस दिन सहवास करनेसे न केवल पुरुषका वीर्य ही नष्ट होता है, बल्कि गर्भ-संचार होता है, तो दुर्बल, रोगी और अल्पायु सन्तानका जन्म होता है।

हमारे पाठकोंको यह सब पढ़कर बड़ा आश्चर्य होगा। रजोदर्शनके दिनसे केवल सोलह दिन तक गर्भसञ्चार होनेका समय, जिसमें पहले सात दिन सन्तानको दृष्टिसे खराब होते हैं, अतः उनको घटा देनेपर शेष बचे ६ दिन। उसमें भी ग्यारहवां और तेरहवां दिन निषिद्ध होनेके कारण निकाल देने पर केवल सात ही दिन बचते हैं। इन सात दिनोंमें रविवार, अष्टमी, एकादशी, अमावस्या आदि तिथि-वार और पर्वदिन तथा मघा मूल आदि नक्षत्र बाद कर देने पर शायद ही दो एक दिन बचे। सन्तानोत्पत्तिके लिये क्या इतना समय पर्याप्त है?

इस प्रश्नके उत्तरमें कहा जा सकता है, कि वीर्यवान् पुरुषके लिये यह दो ही एक दिनका समय यथेष्ट है। इतने ही समयमें वह मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकता है। प्राचीन कालमें यहां यही होता था। इसीलिये यहां घर

-दाम्पत्य- विज्ञान-

घरमें शूरवीर, प्रतापी बुद्धिमान, श्रीसम्पन्न और दीर्घायुषी बालकोंका जन्म होता था । आज हम इन बातोंको भूल गये हैं, दाम्पत्य-धर्मको जलाञ्जलि दे चुके हैं, इसीलिये हमारी दुर्गति हो रही है । यदि हम इन नियमोंसे दूर न जा पड़े होते और इन अनुभव सिद्ध सिद्धान्तोंकी अवहेलना न करते होते, तो हम और हमारी सन्तान उत्तरोत्तर हीनावस्थाको प्राप्त न होती, भारतका शिर नीचा न होता । परन्तु सर्वनाश हो जाने पर अब हमारी आँख खुली हैं । पड़ू कट जानेके बाद उड़नेकी इच्छा हो रही है । इस उद्देश्यकी सिद्धि असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है । परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है, कि हम अगर इन बातोंको समझेंगे, इन पर विचार करेंगे और तदनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करेंगे, तो हम भले ही न सुधरें, परन्तु हमारी सन्तान अवश्य सुधर जायगी । इतना ही बहुत है । इसीसे भारतका मुख उज्ज्वल हो सकता है ।

बहुत लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते । उन्हें तिथि, पर्वणी और नक्षत्रोंका भ्रमेला अच्छा नहीं लगता । वे कहते हैं, कि यह सब व्यर्थका भगड़ा है । अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे हमारी रुचि ऐसी ही हो गयी है । अपने शास्त्रोंकी बातों पर हमें तब तक विश्वास नहीं होता, जब

-दाम्पत्य-विज्ञान-

शक उन्हें युरोपियन विद्वान सत्य नही प्रमाणित करते अथवा जबतक उन पर पाश्चात्य विज्ञानकी मुहर नहीं लगती। वास्तवमें यह बड़ी बुरी बात है। हमें यह भली भाँति समझ लेना चाहिये, कि पाश्चात्य विज्ञान बहुत आगे बढ़ जाने पर भी, कई बातोंमें अभी भारतके विज्ञानसे पिछड़ा हुआ है। दाम्पत्य-विज्ञानके विषयमें भी यही बात है। इस सम्बन्धमें हम एक उदाहरण भी दे देना चाहते हैं। महामुनि अगस्त्यकी इच्छा थी, कि किसी सर्वगुण-सम्पन्न विदुषी और सुशीला सुन्दरीके साथ विवाह करें। वे कन्याकी खोज करने लगे, परन्तु उन्हें कहीं भी जैसी चाहते थे वैसी सुन्दर कन्या न मिली। निदान उन्होंने एक राजमहिषीके गर्भमें परम प्रतापी और सर्वगुण सम्पन्न पुत्रको देखा। उन्होंने सोचा, कि यदि यह गर्भस्थ बालक कन्याके रूपमें परिणत हो जाय, तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो सकता है। यह विचार आते ही उन्होंने उस गर्भस्थ बालकको कन्या बना दिया। उसकी पुरुषोचित मुद्रा लोप हो गयी, इसीलिये उसका नाम लोपामुद्रा पड़ा। अगस्त्यने यथा समय उसीके साथ परिणय कर अपना दाम्पत्य-जीवन व्यतीत किया।

अगस्त्यके पिता भी इस विज्ञानके महान ज्ञाता थे।

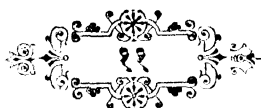
-दाम्पत्य- विज्ञान-

उन्होंने अपने वीर्यको एक घड़ेमें रख दिया था और उसीसे यथासमय अगस्त्यका जन्म हुआ था । इसीलिये उनका नाम कुम्भज पड़ा था । हमारे उपरोक्त कोटिके बन्धुगण इन बातोंको कपोल-कल्पित बतला सकते हैं, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है, कि जो गर्भाशय बच्चेको—वह लड़का है कि लड़की—पहचान सकते थे, उसके गुण दोषकी परीक्षा कर सकते थे, उसकी मुद्रा बदलनेका सामर्थ्य रखते थे और घड़ेसे गर्भाशयका काम ले सकते थे, वे इस विज्ञानमें आधुनिक वैज्ञानिकोंसे कहीं अधिक चढ़े बढ़े थे और अधिक योग्यता रखते थे । पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने कृत्रिम गर्भाशयकी खोज अवश्य की है, परन्तु वे उसमें केवल उन्हीं बच्चोंको पालपोष सकते हैं, जो सात आठ महीनेकी अवष्टामें भूमिष्ठ होते हैं, अथवा जिनके दिन पूरे होनेमें कुछही कालकी कमी रहती है । उनका यह काम भी बड़ी मुश्किलसे पार पड़ता है और बहुत सावधान रहना पड़ता है । परन्तु अगस्त्यमुनिके पिताने जो काम किया था, वह अभी उनके लिये कल्पनातीत है । बिना स्त्री-तत्वकी सहायता लिये केवल पुरुषके वीर्यको ही मनुष्यका रूप देना सहज काम न था । विश्वामित्रकी खोज अधूरी ही रह गयी अन्यथा उन्होंने अमैथुनी सृष्टिकी भी रचना कर डाली होती । पाश्चात्य

—दाम्पत्य-विज्ञान—

विज्ञानके लिये अभी यह बातें अगम्य हैं। वह अभी मूक है। लोग इन बातोंको झूठ मानते हैं, परन्तु जिस दिन वह सत्य प्रमाणित कर देगा उस दिन सब मानने लगेंगे। इसीलिये कहते हैं, कि ऋतुकाल और गर्भाधान सम्बन्धी जो नियम प्राचीन ग्रन्थोंमें अंकित किये गये हैं, उनपर विश्वास रख, जो लोग तदनुसार आचरण करेंगे, वे अवश्य उत्तम सन्तानको अपनी गोदमें बैठानेका सौभाग्य प्राप्त करेंगे।





सहवासका समय

  उत्तम सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको किस ऋतुमें किस समय सहवास करना चाहिये, इसका भी प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंने निर्णय कर रक्खा है। इस कार्यके लिये शिशिर, हेमन्त, वसन्त, वर्षा, शरद और ग्रीष्म-ऋतुयं क्रमशः एक दूसरेसे निकृष्ट हैं। शीत-कालमें जठराग्नि प्रबल रहती है और पाचन क्रिया ठीकसे होती है, अतः मनुष्य विशेष वीर्यवान् होते हैं, इसलिये शिशिर और हेमन्तको विहार किंवा सम्भोगके लिये सर्व-श्रेष्ठ ऋतु कहा है। जिस समय नये फल फूल तथा पल्लव उत्पन्न होते हैं, उस समय अर्थात् वसन्त ऋतुमें, हवामें प्राणवायु (आक्सीजन) का अंशविशेष होता है, अतः विहारके लिये वह ऋतु भी अच्छी है। ग्रीष्म ऋतुमें उत्तापके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कारण रक्त और वीर्यकी दशा अच्छी नहीं होती, अतः बहुत ही कम मात्रामें सहवास करना चाहिये ।

शीतकालमें इच्छानुसार, हेमन्तमें विषय-वासना अत्यन्त प्रबल हो तब ; वसन्त, वर्षा और शरद ऋतुमें तीन तीन दिनके अन्तर पर और ग्रीष्मऋतुमें प्रति मास एक दो या अधिकसे अधिक चार बार स्त्री-सहवास करना चाहिये। परन्तु इससे कोई यह न समझे, कि अन्यान्य नियमोंको ताकमें रख इसी नियमके अनुसार आचरण करना चाहिये । उपरोक्त नियमोंका तात्पर्य यह है, कि स्त्रीका ऋतुकाल भले ही बीत जाता हो, परन्तु ग्रीष्म ऋतुमें प्रति सप्ताह एकबारसे अधिक सहवास न करना चाहिये । मतलब, कि ऋतुकाल, तिथिवार और नक्षत्रादि पर ध्यान रखते हुए ऋतुके अनुसार स्त्री-प्रसंग करना चाहिये ।

यह तो हुई ऋतुओंकी बात । अब हम सहवासके समय पर विचार करेंगे । भारतवर्षमें रात्रिका ही समय स्त्री-प्रसंगके लिये प्रशस्त माना गया है । शास्त्रकारोंका कथन है, कि दिनके समय सहवास करनेसे जीवनी शक्तिका हास होता है । * जो लोग रात्रिके प्रथम प्रहरमें विहार

* प्राण बा एते प्रस्कन्दति ये दिवा रत्या संयुञ्जन्ते ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

करते हैं, उनकी सन्तान अल्पायु होती है। जो लोग रात्रिके दूसरे प्रहरमें सहवास करते हैं, उनकी सन्तान दृष्टिहीन, भाग्यहीन और मूर्ख होती है। जो लोग तीसरे प्रहरमें संयोग करते हैं, उनकी सन्तान दुष्ट होती है और आजन्म दुःखी बनी रहती है, परन्तु जो लोग चौथे प्रहरमें विहार करते हैं, उनके बच्चे बलवान, बुद्धिमान, धर्मनिष्ठ, श्रीसम्पन्न और दीर्घायुयी होते हैं। यदि कन्या हुई तो वह सती साध्वी, पति-प्रेम-परायणा होती है और पुत्र होता है, तो सदाचारी और सर्वगुण सम्पन्न होता है।

यह हमारे शास्त्रकारोंका मत है और इसीको हम श्रेयस्कर समझते हैं, परन्तु किसीका यह भी कथन है, कि शीतकालमें रात्रिके समय, शरद ऋतुमें जब विषयेच्छा प्रबल हो तब, वसन्त ऋतुमें दिन या रात्रि किसी भी समय, वर्षा ऋतुमें मेघ गर्जनाके समय, और ग्रीष्म ऋतुमें दिनको स्त्री समागम करना अधिक लाभदायी है। प्रातःकाल, सन्ध्या-काल, मध्य रात्रि और दो पहरका समय सदैव निषिद्ध है।

कुछ पाश्चात्य-विद्वानोंका मत इसके विपरीत है। उनका कथन है, कि सुबह सातसे दस बजे तक सूर्यकी किरणों और वैद्युतिक प्रवाहोंके कारण वायुमण्डल विशुद्ध रहता है। वायुकी शीतल लहरोंके कारण मन प्रफुल्लित

-दाम्पत्य-विज्ञान-

और चित्त स्वस्थ रहता है। अतः यही समय सहवासके लिये उपयुक्त है।

डाकृर आर० एम० डी० का कथन है, कि जिस समय स्त्री पुरुषोंकी मानसिक स्थिति ठीक न हो, जिस समय गरीष्ट भोजन किया गया हो, जिस समय हृदय शोक सन्तप्त और शरीर किसी परिश्रमके कारण श्रान्त एवम् क्लान्त हो रहा हो, उस समय सहवास करना ठीक नहीं। जिस समय शरीर भलीभाँति स्वस्थ और मन निश्चिन्त हो, हृदयमें किसी प्रकारकी ग्लानि किंवा उद्वेग न हो, वही समय स्त्री-सङ्गके लिये उपयुक्त समझना चाहिये।

डाकृर ए० ए० फिनिश एम० बी० सी० एम० भी इसका हृदयसे समर्थन करते हैं। उनका कथन है, कि जिस समय गरीष्ट भोजन किया गया हो अथवा पाचन क्रिया हो रही हो, उस समय यह परिश्रम करना ठीक नहीं। रात्रिके अन्तिम भागमें, अच्छी तरह सो लेनेके बाद, जिस समय शरीर और मन दोनों भली भाँति स्वस्थ हों उसी समय स्त्री और पुरुषोंको इस प्रवृत्तिमें पड़ना उचित है।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि रात्रिके अन्तिम भागमें ही सहवास करना अधिक लाभदायी है। परन्तु आजकल मानव समाजकी दशा ठीक इसके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

विपरीत है। लोग रात्रिके पहले या दूसरे ही प्रहरमें इससे निवृत्त हो जाते हैं। और देशोंके सम्बन्धमें हम कोई निश्चयात्मक बात नहीं कह सकते, परन्तु भारतका तो यही हाल है। यहांके लोग भोजनादिसे निवृत्त होने पर निद्राभिभूत होनेके पहले ही इस नित्य कर्मसे भी निपट लेते हैं। यही कर्म शायद उनके दैनिक कर्त्तव्योंमें अन्तिम कर्त्तव्य होता है। फिर सोनेके अतिरिक्त उनका और कोई काम बाकी नहीं रहता।

वैज्ञानिक और शास्त्रकार जिस समय चित्त और शरीर स्वस्थ हो, उस समय यह कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं, परन्तु लोग अज्ञानताके कारण भोजन करनेके बाद जिस समय पाचन क्रिया होती है, उसी समय इस प्रवृत्तिमें भी पड़ते हैं। उस समय दैनिक परिश्रमके कारण स्त्री पुरुषों-का शरीर आप ही थका रहता है, तिस पर वे इस कठिन परिश्रमका भार उठाते हैं। ऐसी दशामें उनका स्वास्थ्य और यौवन कितने दिन स्थिर रह सकता है? कितने दिन संसार सागरमें उनकी जीर्ण नैया ठहर सकती है? जिस कर्म द्वारा हमारी भावी सन्तानका भाग्य-निर्माण होता है; जिस कर्मपर हमारे सभी सुख दुःख अवलम्बित रहते हैं, अथच जो हमारे जीवन मरणका प्रश्न है, उसपर हम लोग

-दाम्पत्य-विज्ञान-

विचार तक करनेका कष्ट नहीं उठाते । हमलोग चाहें तो इन सब बातोंको बड़ी आसानीसे समझ सकते हैं और तदनु-नुसार आचरणकर मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं ।

इस अध्यायको समाप्त करनेके पहले हम कुछ और ज्ञातव्य बातें भी अंकित कर देना उचित समझते हैं । शास्त्रकारोंका मत है; कि पुरुषोंको अपनेसे बड़ी अवस्था-वाली स्त्रीके साथ कदापि सम्भोग न करना चाहिये । ऐसा करनेसे युवा पुरुष भी सामर्थ्यहीन और वृद्ध हो जाता है । गर्भवती स्त्रीके साथ भी सम्बन्ध रखना निषिद्ध है । इससे न केवल गर्भहीको पीड़ा होती है, बल्कि वीर्यका अपव्यय भी होता है । जब सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवासकी योजना की गयी है, तब गर्भावस्थामें स्त्रीसे सम्बन्ध रखना ही व्यर्थ है । इसी प्रकार ऋतुमती, कामवासना हीन, गन्दी, स्नेह-रहित, प्रदरादि रोगाक्रान्त और सगोत्रा स्त्री भी त्याज्य है । जो स्त्री रूपवती, सुशीला, सद्गुणी, उच्च कुलोद्भवा, कामवती, सुघड़, दृष्टपुष्ट और वस्त्रालंकारोंसे विभूषित हो उसीके साथ सहवास करना उचित है । क्षुधातुर, तृषा-तुर, बालक, वृद्ध और रोगी पुरुषको भूलकर भी इस प्रवृ-त्तिमें न पड़ना चाहिये ।

सम्भोग करनेके बाद मनमें उल्लास और शरीरमें स्फूर्ति

-दाम्पत्य-विज्ञान-

तथा चैतन्य रहे, व्यायामकी अभिरुचि हो और जननेन्द्रिय प्रफुल्लित रहे, तो समझना चाहिये, कि सम्भोगकी आवश्यकता थी और उसकी यथोचित रूपसे पूर्ति की गयी है, परन्तु संयोगके बाद यदि बेचैनी और निर्बलता मालूम हो, तो निश्चय यह समझना चाहिये, कि अनुचित समयमें, व्यर्थ ही संयोगकर शारीरिक और मानसिक शक्तिका ह्रास किया गया है। प्रतिदिन संयोग करनेपर यदि यह बात दिखाई दे, तो तीन तीन दिनके बाद और फिर भी अन्तर न पड़े तो सात सात दिनके बाद स्त्री-संग करना चाहिये। यदि इतने पर भी शरीर क्षीण होता दिखाई दे, तो समयको और भी अधिक बढ़ा देना चाहिये। अशक्त, सामर्थ्यहीन और रोगी मनुष्यके लिये तो यथासम्भव अधिक समय तक इन्द्रिय निग्रह करना ही श्रेयस्कर है।





अति-विहार



भाग्यवश जो लोग हस्तमैथुनसे बच जाते हैं, प्राकृतिक नियमको भंग करनेवाली उस क्रिया द्वारा अपवे हाथ अपवित्र नहीं करते और तनमनका सर्व-नाश करनेवाली इस बुरी आदतके शिकार नहीं होते, वे बहुधा यौवन कालमें मदान्ध हो अति विषयमें प्रवृत्त होते हैं और अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। जो कुफल हस्त-मैथुनकी आदतका होता है, वही प्रायः इसका भी होता है। भेद केवल इतना ही है, कि हस्तदोषका फल हाथोहाथ कुछ ही दिनोंके अन्दर मिल जाता है, किन्तु इसका फल मिलनेमें कुछ अधिक समय लगता है।

बहुत लोग जो प्रायः बेकार होते हैं, जिन्हें विशेष कामधन्या या सतत परिश्रम नहीं करना पड़ता, वे रातदिन

-दाम्पत्य- विज्ञान-

विषय सम्बन्धी चिन्ताओंमें ही निमग्न रहते हैं। वे अपने यौवनको चार दिनकी चांदनी न समझ कर अचल एवम् चिरस्थायी समझते हैं और रात, दिन, समय, कुसमय, शारीरिक मानसिक शक्ति किंवा इस दुर्व्यसनके भयंकर परिणामोंकी ओर दृष्टिपात न कर विषय-प्रवृत्तिमें अन्धा-धुन्ध रूपसे प्रवृत्त होते हैं और यौवन खो बैठते हैं। इसी-लिये तो हमारे देशमें पच्चीस वर्ष के युवक और बीस वर्ष-की युवतियां बुड़े बुड़ियोंका दृश्य उपस्थित करते हैं !

जैसे भूल कर भा अग्निको स्पर्श करनेवालेका हाथ जल जाता है, वैसे ही अनजानमें भी प्राकृतिक नियम भंग करने वालेको सजा अवश्य मिलती है। सहवास केवल उसी समय करना चाहिये जब इन्द्रियां आप ही आप उत्तेजित हों और काम वासना प्रबल रूप धारण करे। किन्तु यदि ऐसा न हो और केवल मन ही निरंकुशता धारण की हो, तो इन्द्रियोंको उत्तेजित करना और विषय-वृत्तिमें प्रवृत्त होना किसी प्रकार वाञ्छनीय नहीं। ऐसा करनेसे हमलोग लाभके बदले हानि उठाते हैं, कुछ प्राप्त करनेके बदले खो बैठते हैं। प्रकृति हमें इसके लिये कदापि क्षमा नहीं करती।

संसारमें जो मनुष्य अपने भविष्यका विचार नहीं

—दाम्पत्य-विज्ञान—

करता, वह मूर्ख समझा जाता है। फिर भी कितने दुःखकी बात है, कि यह जानते हुए भी, कि वीर्य ही शरीरका सार है, वीर्य ही बल बुद्धिका आधार है और वीर्य ही पर जीवन अवलम्बित है—लोग उसकी रक्षाकी ओर ध्यान नहीं देते। यह सभी जानते हैं, कि वृद्धावस्थामें इसकी कमी पड़ जायगी और बिना इसके जीवन धारण करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जायगा, फिर भी लोग उसका मूल्य नहीं समझते। जिस तरह नींव हिल जाने पर मकान और जड़ काट देने पर वृक्ष खड़ा नहीं रह सकता, उसी तरह वीर्य हीन शरीर अधिक समयतक नहीं चल सकता। मनुष्यको चाहिये, कि वह धनकी अपेक्षा वीर्यरक्षामें अधिक यत्नशील रहे, क्योंकि धन तो किसी समय भी प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु खोया हुआ वीर्य फिर हाथ नहीं आ सकता। जो लोग व्यर्थ ही अपना वीर्य नष्ट करते हैं, वे प्रति क्षण मृत्युपथकी ओर अग्रसर होते हैं। जबतक शरीरमें वीर्य रहता है, तभीतक यौवन भी स्थिर रहता है। वीर्यहीन मनुष्य छोटी अवस्थामें ही वृद्ध बल्कि वृद्धसे भी गया बीता हो जाता है। जो लोग अपने यौवनकी यथोचित रूपसे रक्षा नहीं करते, उन्हें भविष्यमें अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ता है। परन्तु दुःखकी बात यही है, कि जो बातें

-दाम्पत्य- विज्ञान-

बना देती हैं। उस समय मनुष्य मृत्युकी शान्ति-मयी गोदमें प्रथम ग्रहण करनेकी कामना करने लगता है और कामना करते ही करते किसी दिन कालके गालमें समा जाता है। मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ मनुष्य उस समय अपने इन कर्मोंके लिये न जाने कितना पश्चात्ताप और सोच विचार करता है, परन्तु उस समय यह सब करनेसे लाभ ही क्या हो सकता है ? प्रकृति उसे उसके अनियमित व्यवहारके कारण दण्ड अवश्य देती है और उसे वह चुपचाप बिना किसी आपत्तिके सहन करना पड़ता है।

अति विहारमें प्रवृत्त होनेवाले लोग आरम्भमें सानन्द कालयापन करते हैं और समझते हैं, कि इस समय हमारे बराबर सुखी संसारमें और कोई है ही नहीं, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद उनका शरीर रोगका घर हो जाता है और मृत्युविभीषिका भयंकर रूप धारण कर उनके सन्मुख नृत्य करने लगती है। जो लक्षण हस्तदोषके रोगमें पाये जाते हैं, वही प्रायः इस रोगीमें भी दिखाई देते हैं। रोगका मूल कारण होता है—वीर्यक्षय, अतः उसके कारण उत्पन्न होनेवाली समस्त व्याधियां दोनों प्रकारके रोगियों पर समान रूपसे ही आक्रमण करती हैं। शरीर दुर्बल हो जाता है। पैरकी पिण्डो और शरीरके सन्धिस्थानोंमें

-दम्पत्य-विज्ञान-

पीड़ा होने लगती है। चेहरा उतर जाता है। नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है। नेत्र निस्तेज हो जाते हैं। चाल लटपटो हो जाती है और कितनों हीके पैर इतने कमजोर हो जाते हैं, कि शरीरका भार भी नहीं सम्हाल सकते। पाचन-शक्ति अनियमित हो जाती है। पेटमें कब्जियत बनी रहती है। पहले कुछ कड़ा और बादको पतला दस्त होता है। स्त्री-संगके समय सत्वर वीर्य स्खलित हो जाता है। बवासीरका रोग भी बहुधा इसी कोटिके रोगियोंमें दिखाई देता है। वीर्यक्षयके कारण जननेन्द्रिय और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली समस्त नाड़ियाँ व यन्त्र समूह खराब हो जाते हैं अतः बारम्बार वीर्यस्राव होने लगता है। इसके अतिरिक्त नेत्र और मस्तिष्क सम्बन्धी तथा और न जाने कितने ही रोग उत्पन्न होकर रोगीके लिये यमसदनका मार्ग प्रशस्त बना देते हैं।

यह सब मनुष्यको अपने ही कर्मके कारण भोग करना पड़ता है। परन्तु इस सम्बन्धमें अब और अधिक न लिख कर हम अपने पाठकोसे केवल इतना ही कहेंगे, कि क्षणिक आनन्दके प्रलोभनमें पड़, उन्हें स्त्री-संगकी मर्यादा भूलकर भी उलझन न करनी चाहिये। जो नव-दम्पति अपनी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दशा पर विचार किये

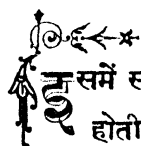
-दाम्पत्य-विज्ञान

बिना ही अति विहारमें प्रवृत्त होते हैं, उनका घर न केवल अल्पजीवी सन्तानोंसे ही भर जाता है, बल्कि अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करते हुए उन्हें भी शीघ्र अपनी जीवन यात्रा समाप्त करनी पड़ती है। इसलिये पिछले अध्यायोंमें लिखे हुए नियमोंके अनुसार ऋतुकाल, शारीरिक सामर्थ्य और अवस्थादि बातों पर विचार कर सन्तानोत्पत्तिके लिये ही मैथुन-कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। इस सम्बन्धमें नियमित रहना ही अजरत्न और अमरत्व प्राप्त करनेका मूल मन्त्र है। यही सुख और शांति प्रदान करनेवाली एकमात्र साधना है।





कामवृत्तिका दुरुपयोग



इसमें सन्देह नहीं, कि प्राणी-मात्रमें कामेच्छा उत्पन्न होती है और वे इसकी तृप्ति किया चाहते हैं। परन्तु इसके साथ ही यह ज्ञान लेना भी आवश्यक है, कि यह कैसे और कहाँसे उत्पन्न होता है तथा शरीर और मन पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

शरीरकी हरएक गति-विधि तथा विचारोंके उत्पन्न होनेका केन्द्र मस्तिष्क है। अथवा यों कहना चाहिये, कि इस मस्तिष्क भाण्डारमें ही शरीर-सञ्चालन तथा इन्द्रिय-परिचालनके समस्त विचार पैदा होते हैं और यहींसे वह आदेश दिया जाता है, जिसके अनुसार शरीरके अन्यान्य अवयव अपना अपना कार्य सम्पादन करते हैं।

गर्दनके ऊपरका भाग, जिसे हम सिर कहते हैं, उसीमें

-दाम्पत्य-विज्ञान

मस्तिष्क है। शरीरके चमड़ेके नीचे, चर्बोंकी तहके साथ साथ जो रक्त-वाहिनी नाड़ियाँ या सफेद पतले पतले धागे हैं, इन्हें नाड़ी सूत्र कहते हैं और इनके द्वारा ही मस्तिष्कसे सब समाचारोंका आदान-प्रदान हुआ करता है। इसीलिये इनका दूसरा नाम ज्ञान-सूत्र भी है।

मस्तिष्कका आकार अण्डे जैसा है। यह दो भागोंमें विभक्त है। एक ऊपरका और दूसरा नीचेका। ऊपरवाला भाग नीचेके भागसे बड़ा है, इसे बृहत् मस्तिष्क और निचले भागको लघु-मस्तिष्क कहते हैं। यह लघु-मस्तिष्क, मस्तिष्कका वह भाग है, जो खोपड़ीके निचले भागमें फैला हुआ है अथवा यों समझना चाहिये, कि मस्तिष्कके निचले भागके सब गहरों और पनालोंमें फैला हुआ है। बड़े मस्तिष्कसे यह आकारमें छोटा है और इसकी बनावट, तही तथा इसके गड्ढोंमें भी बड़े मस्तिष्कसे बहुत कुछ अन्तर है। बड़े मस्तिष्कका उभार और पनाले बड़े और ज्यादा गहरे दिखाई देंगे और संख्यामें भी इससे बहुत ज्यादा हैं, परन्तु यह लघु-मस्तिष्क यद्यपि बड़ेकी अपेक्षा बहुत छोटा है, परन्तु इसमें एक तरहका भूरे रङ्गका पिल-पिला तरल पदार्थ बहुत ज्यादा भरा हुआ है। अवस्था और कदके अनुसार, हर एक मनुष्यका यह लघु-मस्तिष्क

-दाम्पत्य-विज्ञान-

आकारमें भी छोटा बड़ा होता है। इन गड्डों और पनालोंका मानव बुद्धि और शक्तिसे बहुत ज्यादा सम्बन्ध है और यही कारण है, कि बच्चोंकी बुद्धिका विकास उतना अधिक नहीं होता, जितना जवानोंका। क्योंकि बचपनमें यह मस्तिष्क परिपूर्ण नहीं होता। इसकी परिपूर्णताका समय २५ से लेकर चालीस वर्षकी अवस्था तक है। एक बात और भी है—पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका यह लघु-मस्तिष्क कुछ बड़ा होता है।

इस लघु-मस्तिष्कोंमें दो तरहकी शक्तियां छिपी हैं। एकसे गृह-कार्यकी ओर प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और दूसरीसे अंग-सञ्चालनकी विभिन्न क्रियाएं। उठना, बैठना, दौड़ना, घूमना, तथा सभी अंग-सञ्चालन कार्य इसीकी क्रिया-शीलताके फल हैं। यह देखा गया है, कि जिसका यह मस्तिष्क बड़ा और बलवान है, वह गृह-कार्य अत्यन्त सुचारु रूपसे सम्पन्न करता है, उसके कामोंमें तेजी और खूबसूरती दिखाई देती हैं, वह अपने सामने आनेवाले मनुष्य या पदार्थोंको तुरन्त विचारोंकी कसौटी पर कस लेता है और शीघ्र सफलता प्राप्त करता है, परन्तु लघु-मस्तिष्क जिसका छोटा है, उसके सभी कामोंमें असफलता दिखाई देती है और उसके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सभी मानसिक और शारीरिक कार्य धीर-गतिसे होते हैं ।

अब हम अपने विषय पर आते हैं । ऊपर ही कह चुके हैं, कि यह लघु-मस्तिष्क ही गृह-कार्यकी ओर प्रवृत्ति उत्पन्न करता है । अतः यह भी निश्चित है, कि यहींसे कामेच्छा भी पैदा होती है । बच्चोंमें यह मस्तिष्क रहता तो अवश्य है, परन्तु जितना रहनेसे कामेच्छा होती है, उतना नहीं रहता अर्थात् पूरे मस्तिष्कका बीसवाँ अंश रहता है, परन्तु वही जवानो अर्थात् २५ वर्ष की उम्र हो जाने पर, मस्तिष्कका सातवाँ अंश छू लेता है । इस वृहत् आकारके कारण ही मनुष्यके मन पर इस अवस्थामें, इसका प्रभाव बहुत अधिक रहता है । परन्तु साथ ही यह भी एक विचारनेकी बात है, कि यह लघु-मस्तिष्क, मस्तिष्कके कारखानेके निचले भागमें बना है, इसलिये इसमें जीवनकी रक्षा करनेवाली शक्ति, सोचने विचारने अथवा शासन करनेकी शक्तिसे विशेष सन्निहित है । यह बात सदैव ध्यानमें रखने और मनन करने योग्य है; कि मस्तिष्कके यन्त्रोंका स्थान जितना ही ऊँचेपर होगा, उतना ही इसके सञ्चालनसे, सुख और सौभाग्य, विशेष प्राप्त होगा । यह बात हमने इसलिये कही है, कि आजकल लोगोंमें यह भ्रम

-दाम्पत्य-विज्ञान-

धारणा अधिकतर फैली हुई है, कि कामेच्छाकी तृप्तिसे बहुत सुख मिलता है। नित्यकी इस भूलने, इस संसार पर, एक महान विपत्ति लाद दी है। युवक-युवतियाँ उस अवसरकी ताकमें रहती हैं, जब वे जी भरकर अपनी इस अभिलाषाकी तृप्ति कर सकें। यही वजह है, कि वे अपने शरीरकी बाढ़, अंग प्रत्यंगकी दृढ़ता और सौन्दर्य तथा सौष्ठवकी रक्षापर ध्यान भी नहीं देतीं और उसी समयसे इस वृत्तिको चरितार्थ करनेमें लग जाती है जब जवानी तो दूरकी बात है, उनकी किशोरावस्था भी परिपूर्ण नहीं होती। इसका परिणाम वही होता है, जो होना निश्चित है—अर्थात् रोग, वेदना और असमयमें यमपुरीकी यात्रा। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, कि छोटी उम्रमें ही कामेच्छा का उत्पन्न हो जाना और खासकर इसका छोटी उम्रमें चरितार्थ होना, छोटी जिन्दगीका प्रधान चिन्ह है।

मस्तिष्कमें एक प्रकारका ऐसा तरल पदार्थ पैदा होता है, जो नसोंमें ताकत पहुंचाता है, शरीरमें शक्ति भर देता है। परन्तु जब किसी खास इन्द्रियसे बहुत ज्यादा काम लिया जाता है, तो यह तरल पदार्थ अन्य स्थानोंमें जाना बन्द कर, उसी इन्द्रियमें विशेष जाता है। अब यदि कामेन्द्रियका ही अधिक उपयोग हुआ और लगातार काम

-दाम्पत्य- विज्ञान-

वासनाको चरितार्थ करनेका प्रयोग होता रहा तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं ; कि वह शक्ति देनेवाला प्रत्येक पदार्थ कामेन्द्रियमें ही ज्यादाकर आयागा तथा अन्य इन्द्रियां— शरीरके अन्य भाग, दुर्बल, निस्तेज और निकम्मे हो पड़ेंगे । ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं, जिनमें मनुष्योंने कामेन्द्रियका इतना और ऐसा भयानक दुरुपयोग किया है, कि सुधरने-का मौका ही न आ सका और वे मौतके नवाले बन गये ।

शोक और दुःखकी बात है, कि आजकल देशमें इस पैशाचिक काम-वृत्तिका घर घर ताण्डव नृत्य हो रहा है, इसकी लीला हर एक स्थलपर अनवरत फैली हुई दिखाई देती है । स्कूलमें दुधमुँहे बच्चे, जिनपर देश तथा समाजका दार-मदार है, अनुचित रीतिसे काम-लीलाका खेल खेला करते हैं और नौजवान युवक-युवतियोंका तो नाम लेना ही वृथा है । उनके लिये इस संसारमें इस जीवन-नष्टकर तृप्तिके सिवा और कुछ है ही नहीं और विवाह हो जानेपर तो फिर कुछ पूछना ही नहीं है । धनी निर्धन ऊँच-नीच, विद्वान और मूर्ख—सभी इस शय्या-संग्रामके वीर योद्धा बनकर, परम सुन्दर इस स्नेह बन्धनको दुरूह और भार-स्वरूप बनाकर ही छोड़ते हैं । इस काम-वृत्तिका दुरुपयोग वर्तमान कालके लोगोंका सबसे बड़ा दोष—सबसे बड़ा

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पाप है। ऐसे समयमें, इस काम-वासनाके ठीक ठीक परिचालनकी बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि इस उचित उपयोगके ज्ञान द्वारा ही मनुष्य-जाति इस लोकमें सदा सुख सौभाग्य भोगती हुई, परमानन्दको प्राप्त कर सकती है।

इस बातको आज अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, कि कामवृत्तिका दुरुपयोग क्या है? काम-वृत्तिके दुरुपयोगसे हमारा मतलब लड़के, लड़कियों तथा मनुष्योंके उन कार्योंसे है, जो वे अस्वाभाविक रीतिसे करते हैं, असमयमें करते हैं और आवश्यकतासे अधिक करते हैं।

इस दुरुपयोगके प्रचारके कितने ही कारण हैं और उनमें सबसे जवर्दस्त कारण तो माता-पिताका वह अज्ञान है, जिसका प्रभाव उनकी सन्तानपर, विशेष रूपसे पड़ता है। सन्तान उत्पन्न करनेमें भी एक ज्ञानकी आवश्यकता है और इस विषयकी अज्ञानताका उनपर बहुत अधिक प्रभाव पड़चता है, जो या तो गर्भमें हैं अथवा आनेवाले हैं। सन्तानोत्पत्तिके नियमोंका न जानना भी गर्भस्थ बच्चोंमें कामवृत्तिकी अधिकताका बीज बोना है। यह विषय आगे चलकर तथा हमारी “मनचाही सन्तान” नामक पुस्तकमें और भी अच्छी तरह समझा दिया गया है। इस स्थानपर इतना ही बतला देना पर्याप्त है, कि यदि किसी

-दाम्पत्य- विज्ञान-

माता-पिताको ऐसी सन्तान उत्पन्न हुई हो, जिसमें काम-वृत्तिका अंश बहुत ज्यादा दिखाई देता हो, तो उन्हें आत्म-संयमके नियमोंपर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये और उन्हें अच्छी तरह पालन करते रहना चाहिये। इसके अलावा अधिक काम-वृत्तिके उत्पन्न होनेका एक कारण हमारा वह भोजन पदार्थ भी है, जिसके द्वारा हम अपने शरीरमें अप्राकृतिक उत्तेजना उत्पन्न कर लेते हैं।

हमारे कथनका तात्पर्य यह है, कि हमलोग मांस, अण्डे, मछलियाँ, नमक, मिर्च मसाले, भिन्न भिन्न प्रकारकी शराबें, तम्बाकू, चाय, काफी, भांग, गांजा तथा :खूब महीन आटा, वगैरह ऐसी चीजें खाते हैं, जिनका प्रभाव पेटमें जानेपर ऐसा पड़ता है, कि काम यन्त्रोंकी उत्तेजना में विशेष सहायता पहुंचती है और हमारा मन इस ओर सदैव चंचल बना रहता है। चाय, काफी, तम्बाकू, शराब और पशु-पक्षियोंके मांस—ये सभी उत्तेजक और मादक हैं। ऐसे पदार्थोंका सेवन तन्तुओंमें उत्तेजना भर देता है और खासकर काम-तन्तुओंके उत्तेजित होनेमें तो इनसे बहुत ज्यादा मदद पहुंचती है। इनका प्रभाव मस्तिष्कपर भी पहुंचता है और यही वजह है, कि काम-वृत्ति अधिक जागरित और उत्तेजित होती है। इसीका यह परिणाम

-दाम्पत्य-विज्ञान-

है, कि काम-वासनाएं मनमें चक्कर मारा करती हैं। नमक, मिर्च, सरसोंके तेलके बने पदार्थ, अथवा नमकीन भोजन और मैदाके पदार्थ—ये सभी बदहजमी पैदा करते हैं, दस्तमें कब्ज होता है, नसोंमें कड़ापन आता है, ज्ञान-तन्तुओंकी गति परिवर्तित होती है तथा इनका भुकाव उस और विशेष हो जाता है, जहाँसे काम चेष्टा उत्पन्न होती है, लड़के लड़कियोंमें पैदा हुई बदचलनी भी इस गरिष्ठ और उत्तेजक भोजनका ही परिणाम है।

हमारे इस कथन पर यदि किसीको सन्देह हो, तो उन्हें चाहिये, कि उत्तेजक पदार्थोंका सेवन एक दम बन्द कर थोड़े दिनोंतक पवित्र—व्यभिचार-हीन जीवन बितायें। थोड़े दिनों तक इस तरह रहने बाद वे एक प्याला चाय या काफी पी लें, तक्षणत् मालूम होगा, कि उनमें काम-वासना पैदा हो गयी। अथवा कुछ दिनोंतक सीधे-सादे भोजनका व्यवहार करनेके बाद, किसी दिन एक गिलास शराब ही चढ़ा जायँ और देखें कि उनमें कामुकता पैदा होती है या नहीं।

आजकलके शौकीन बाबू और बीवियोंमें होटलमें खाना भी एक फैशन समझा जाता है। इसका अभाव उनके बाबूपनेको पूरा नहीं होने देता। पाश्चात्य सभ्यताके

-दाम्पत्य-विज्ञान-

द्वारा ऋषि ऋण, पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृऋण और यज्ञ साधन द्वारा देवऋणसे मुक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार श्रुति का कथन है कि:—

प्रजा तन्तुं मा व्यवच्छेत्सी ।

अर्थात् पितामह, पिता, पुत्र और पौत्रादिकी परम्परासे प्रजाका सूत्र अटूट रखना चाहिये। संसारमें भी हम देखते हैं, कि जिसके सन्तान नहीं होती, उसको लोग अभागा कहते हैं। जिन स्त्रियोंके लड़के नहीं होते, उनको लोग आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। इसके विपरीत जिसके दो चार लड़के होते हैं, वह भाग्यशाली समझा जाता है। मानव समाजमें उसकी प्रशंसा होती है और वह स्वयं भी अपनेको धन्य समझता है।

सन्तान उत्पन्न होनेपर पहले तो मातापिताको असीम आनन्द होता है। सन्तान क्या हुई, मानो उनके गौरव और प्रतिष्ठामें वृद्धि करनेवाली एक वस्तुका आविर्भाव हुआ। एक पुरुष जो अबतक बड़े बूढ़ोंकी दृष्टिमें तीन गेतवारका छोकरा था और जिसने एक बालिकाका पाणि ग्रहण कर केवल उसके पतिका ही पद प्राप्त किया था, वह अब पूज्य पिताके पदपर अधिष्ठित हो गया। पिताका पद दूसरे पदोंकी अपेक्षा बहुतही उंचा और पवित्र होता है।

—दाम्पत्य-विज्ञान—

इसीलिये लोग उसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। दूसरी ओर वह बालिका, जिसने अभी चार ही दिन हुए नववधूका पद प्राप्त किया था, जो अबतक कल्पनाके मनोराज्यमें ही विचरण करती थी, वह अब माताका पवित्र आसन प्राप्तकर अपने नारी-जीवनको सार्थक समझने लगी। लोगोंकी दृष्टिमें उन पति पत्नी दोनोंका महत्व बढ़ गया। दोनोंका प्रेम जो अबतक कोरा प्रेम था, जिसमें पार्श्विक प्रेमकी ही मात्रा अधिक रही थी और लोग जिसे घृणित दृष्टिसे देखते थे, वह अब सफल और पवित्र हो गया, पतिपत्नी —दोनोंका सम्बन्ध अधिक दृढ़ और अधिक मधुर हो गया साथ ही घरवालोंके हृदय भी आनन्दसे पूरित हो गये। उन्हें मनोरञ्जनकी एक सामग्री मिल गयी। नन्हेसे बच्चेको अपनी गोदमें बैठा हुआ देख, किसका हृदय आनन्दित नहीं होता ? किसे आह्लाद नहीं होता ?

बच्चेके कारण घरकी भी श्री बढ़ गई। अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। अबतक जो घर श्मशानकी भांति सूना और सिन्दूर हीना विधवा ललाटकी तरह शोभा हीन मालूम होता था, वह अब भरापुरा और शोभायमान प्रतीत होने लगा। जो घर अन्धकारमय था वह अब आलोकित हो उठा। जननी पदपर अधिष्ठित होनेके कारण सखी सहेलियोंमें माताका

-दाम्पत्य- विज्ञान-

और पितृत्व प्राप्त करनेके कारण इष्ट मित्रोंमें पिताका गौरव बढ़ गया । अड़ोसी पड़ोसी दोनोंके भाग्यको सराहने लगे । स्त्री पुरुष दोनों अपने दाम्पत्य-जीवनको सफल होते देख अपनेको धन्य समझने लगे ।

हमारे भारतमें यही बात होती है । भारतहीमें क्यों समस्त संसारमें सन्तान उत्पन्न होनेपर आनन्द मनाया जाता है । वे जड़ली मनुष्य, जिनतक अभी सभ्यताकी रोशनी नहीं पहुंच पायी, और जो अबतक संसारकी आश्चर्य जनक प्रगतियोंसे अवगत नहीं हुए, वह भी नाना प्रकारके उत्सव मनाते हैं । पशु पक्षी और कीट पतंगमें भी यही बात पाई जाती है । यह सब क्यों होता है ? इसीलिये, कि सन्तानोत्पतिको न केवल मनुष्य ही, बल्कि पशुपक्षी भी अच्छा कार्य समझते हैं । उनके जीवनमें इससे बढ़कर आनन्दका प्रसंग शायदही और आता हो । इससे जन-समाजमें उनका गौरव बढ़ता है, प्रतिष्ठामें वृद्धि होती है और सर्वत्र आदर मिलता है । लोग यह भा समझते हैं, कि हमारे सुख दुःखका एक संगी उत्पन्न हुआ, जब वृद्ध होंगे, हाथ पैर थकेंगे, तब इससे सहारा मिलेगा । इसी लिये सन्तान उत्पन्न होनेपर लोगोंको असीम आनन्द होता है । इसीलिये वे आनन्दोत्सव मनाते हैं ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सन्तानोत्पत्तिसे इस प्रकार आनन्द होना स्वाभाविकही है। इससे न केवल मातापिता अपने भावी जीवनको सुखमय समझने लगते हैं, बल्कि सृष्टि-रचनाके प्राकृतिक कार्यमें भी सहायता पहुंचती है। परन्तु सम्प्रति बहुतेरे वैज्ञानिक सन्तानोत्पादनके कार्यको अनुचित समझने लगे हैं। उनका कथन है कि, अधिक सन्तान उत्पन्न होनेसे कोई लाभ नहीं। यदि सब लोग इसी तरह अधिकाधिक सन्तानें उत्पन्न करते रहे, तो कुछ दिनमें जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी, कि उन्हें खानेको अन्न, पहननेको कपड़े और रहनेको स्थान तक न मिल सकेगा। इसलिये लोगों-को चाहिये, कि वह अधिक संख्यामें सन्तान उत्पन्न करना छोड़ दें।

लोग वैज्ञानिकोंकी यह बात कहांतक मानेंगे, सो नहीं कहा जा सकता। वे देखते हैं, कि अनादिकालसे सन्तानोत्पत्तिका यही क्रम चला आ रहा है और अबतक उन्हें रहनेके लिये स्थान आदिकी कमी नहीं पड़ी, तो अब भविष्य में कैसे पड़ सकती है? और यदि पड़े भी तो पड़ा करे। वे इसकी चिन्ता क्यों करें? उन्हें तो एक ही कर्ममें प्रवृत्त होनेपर दूना लाभ होता है। एक ओर आनन्द मिलता है और दूसरी ओर सन्तान उत्पन्न होती है। सन्तानो-

-दम्पत्य- विज्ञान-

त्पत्ति एक पवित्र कर्म माना गया है, इसलिये उन्हें वह करनेमें किसी प्रकारका संकोच भी नहीं लेना पड़ेगा। वे देखते हैं, कि जिसके अधिक सन्तानें होती हैं, वह संसारमें आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। ऐसी दशामें लोग सन्तानोत्पत्तिके कार्यसे कसे विमुक्त हो सकते हैं ?

केवल भारतहीमें क्यों, हम तो समझते हैं, कि समस्त संसारमें अधिक सन्तानोंको जन्म देना बड़े गौरवकी बात समझी जाती है। पाश्चात्य देशोंमें कहीं कहीं अधिक सन्तान उत्पन्न होनेपर उनके माता पिताको राज्यकी ओरसे पुरस्कार देनेकी प्रथा प्रचलित है। लोग ऐसे दम्पतियोंके भाग्यकी सराहना करते हैं और वैसा सम्मान प्राप्त करनेके लिये लालायित रहते हैं। अभी हालहीमें मैडम मोनियर नामक २६ वर्षकी एक फ्रेंच युवतीने एक साथ ही चार कन्याओंको जन्म दिया था। इसके पहले भी उसे एक साथ तीन बच्चे उत्पन्न हुए थे। फ्रांसके जिस शहरमें वह युवती रहती थी, उस शहरका मेयर दोनों बार उसे पारितोषिक देने गया था। न केवल मेयर ही, फ्रांसके प्रेसीडेण्टने भी कुछ चीजें पारितोषिक रूपमें भेजकर इस सौभाग्यके लिये उन्हें बधाई दी थी। पतिपत्नी दोनों इस सम्मानको प्राप्तकर अपनेको धन्य समझने लगे थे। -

-दम्पत्य-विज्ञान-

हमने और भी कतिपय उदाहरण संग्रह किये हैं, जिनको देखनेसे प्रतीत होता है, कि अधिक सन्तानोंको जन्म देनेसे सिवाय प्रशंसाके किसी दम्पतिकी निन्दा नहीं होती। इंग्लैण्डके पिटरबरो परगनेकी एक महिलाने बार सवाचार वर्षमें दो बार तीन तीन बच्चोंको जन्म दिया था। इसी तरह एक वेलजियन महिलाने साल भरसे कुछ ही अधिक दिनोंमें छः बच्चोंको जन्म दिया था—पहले तीन बच्चे जनवरीमें और दूसरे उसी सालके दिसम्बरमें भूमिष्ट हुए थे। पैरिसकी एक भठियारिने तो इनसे भी बाजी मार ली थी। वह प्रति वर्ष तीन तीन बच्चोंको जन्म देती थी। यह क्रम सात वर्षतक चलता रहा। इतने समयमें उसका घर २१ बच्चोंसे भर गया। घरमें उन्हें खेलनेके लिये शायद स्थान भी न बचा होगा, परन्तु संसार भरने उसके सौभाग्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की।

चिकागोकी मिसिस ओरमसबी भी ऐसी ही एक महिला हैं। इन्होंने ७ वर्षमें १४ बच्चोंको जन्म दिया था। सभी अबतक जीते जागते हैं। पहले पहल उसके एक साथ ही चार बच्चे उत्पन्न हुए—दो लड़के और दो लड़कियाँ। दुबारा तीन लड़कियाँ ही लड़कियाँ उत्पन्न हुईं। फिर दो बार दो दो बच्चे भूमिष्ट हुए एकवार दो लड़के और

-दाम्पत्य-विज्ञान-

दूसरी बार दो लड़कियाँ । इसके बाद तीन बार एक एक बच्चा भूमिष्ट हुआ । इस तरह ७ वर्ष में उस वीर महिलाने अपने देशकी जन संख्यामें १४ मनुष्योंकी वृद्धि की ।

योर्कशायरके एक किसानके बालबच्चोंकी संख्या ३८ तक जा पहुँची थी । रोमन अरकाटको उनकी आयरिश पत्नीने ३० बच्चे प्रदान किये थे, परन्तु लेवी ब्रेकशो नामक एक कनेडियनने इन सबोंसे बाजी मार ली । इन्होंने तीन विवाह किये थे । तीनों स्त्रियोंसे उन्हें ४१ बच्चोंकी प्राप्ति हुई । सन १९२३ में मिष्टर लेवी ब्रेकशोने बड़ी धूम-धामके साथ अपना छालछटा जन्मोत्सव मनाया था । उस समय उनकी एक भी पत्नी जीवित न थी, परन्तु बच्चोंकी फौजने उन्हें किञ्चित भी यह अभाव अनुभव करने न दिया ।

एक स्कोटिश किसानका उदाहरण भी इसी जोड़का है । उसके बालबच्चोंका नम्बर ६२ पर जा पहुँचा था, जिसमेंसे ४६ अपना शैशवकाल अतिक्रमण कर सके थे । शेषने उसी अवस्थामें मृत्युकी गोदमें विश्रांति ग्रहण की थी ।

अब हम कई ऐसे परिवारोंका उदाहरण देना चाहते हैं, जो बहुत थोड़े समयमें आशातीत रूपसे पल्लवित होते हुए देखे गये हैं । योर्कशायरकी मिस्सिस लाइट फुट ६७

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वर्षकी अवस्थामें जिस समय मृत्यु शैय्यापर पड़ीं, उस समय उनके आसपास १६१ मनुष्य एकत्र हुए थे। यह लोग कोई बाहरी मनुष्य न थे। सभी उनके निजी बालगोपाल थे। मिसिज लाइट फुटने स्वयं ६ बच्चोंको जन्म दिया था। ६ के ७६ बच्चे हुए। ७६ के ७३ हुए और उन ७३ में भी एकके नवजात शिशुको झूलेमें झुलानेका सौभाग्य उस वृद्धाने प्राप्त किया था।

केण्टकी मिसिस हनीवुड अपनी ६४ वर्षकी अवस्थामें इसी तरह ३६७ बच्चोंको देख सकी थीं। उन्होंने स्वयं १६ बच्चोंको जन्म दिया था। तीसरी पुश्तमें १६ से ११४ हो गये। चौथी पुश्तमें ठीक इसके दुगुने अर्थात् २२८ हुए और पाँचवी पुश्तके ६ बच्चोंको भी अपनी गोदमें बैठा कर उस बुढ़ियाने आनन्द मनाया था। स्टोवकी उमराव जादी लेड़ी टेम्पल इन सर्वोंसे चढ़ी बढ़ी थी। उसकी सन्ततिका नम्बर, सुनते हैं, कि ७०० से भी ऊपर जा पहुंचा था। इसके अतिरिक्त इस समय भी कुछ ऐसे मनुष्य जीवित हैं, जिनकी सन्तान सैकड़ोंसे गिनी जाती हैं। ओहियो स्थित किलटनके निवासी मिस्टर थोम्स इलीसन ऐसे हो एक पुरुष हैं। इनकी अवस्था इस समय ६३ वर्षकी है। इनके तीन व्याह हुए थे। इनकी

-दाम्पत्य- विज्ञान-

सबसे बड़ी सन्तानकी अवस्था इस समय ६५ वर्षकी है। मिस्टर थोम्स इलीसनको उनकी तीनों स्त्रियोंने ५० बच्चे अर्पण किये थे। ५० के १२५ बच्चे हुए। इनमेंसे अभी बहुतोंकी अवस्था बहुत छोटी है। जो बड़े हैं उनके बच्चोंकी संख्या ६० है। इन साठमेंसे भी कई एक पिताके पूज्य पदपर अधिष्ठित हो चुके हैं। इन बच्चोंका नम्बर भी २७ पर जा पहुंचा है। इस तरह मिस्टर थोम्स इलीसन अपने नाती पोते और उनकी सन्तति मिलाकर २६२ प्राणियोंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं। इस संख्यामें उनके दामाद, कुलबधू, या नाते रिश्तेदार, शामिल नहीं हैं। संसारमें इस समय सबसे बड़ा परिवार इन्हींका है।

ब्रह्मदेशकी एक बुढ़ियाका भी यही हाल है। वह करन जातिकी है और कीमन नामक ग्राममें रहती है। इस समय उसकी अवस्था १६३ वर्षके करीब है। वह स्वयं नहीं जानती, कि कब उसका जन्म हुआ था। ब्रह्मदेशमें जिस समय बोदापाय नामक राजा सिंहासना-रुढ़ हुआ, उस समय उसकी अवस्था ३० वर्षकी थी और वह दो कन्याओंकी माता थी। इससे जाना जाता है, कि उसका जन्म करीब १७६१ ईस्वीमें हुआ था। पहले

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पतिका देहान्त हो जाने पर इसने दूसरा विवाह किया था, जिससे इसे और दो कन्यायें उत्पन्न हुई थीं। चार कन्याओंके ४ पुत्र हुए। उन चारोंके ६६ वच्चे हुए हैं और उनमेंसे भी कुछके १८ वच्चे उत्पन्न हुए। इस तरह उसके परिवारमें इस समय १०५ मनुष्य हैं। अन्यान्य स्वजनोंसे कोई काम नहीं। सबसे बड़ी लड़कीकी अवस्था १२० वर्षकी है और वह अपनी मातासे कहीं अधिक बूढ़ी दिखाई देती है। इस भाग्यशाली बुढ़ियाका नाम डाजाऊ है।

इन उदाहरणोंसे हमारे पाठकगण समझ सकते हैं, कि अधिक सन्तान उत्पन्न होने पर कोई किसीकी निन्दा नहीं करता, अतः सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी जा सकती। स्वतन्त्र रूपसे यह कार्य सम्पन्न होता चला आया है और अनन्तकाल तक होता रहेगा। ऐसी दशामें वैज्ञानिकोंकी यह चिन्ता, कि लोग क्या खायेंगे, क्या पहनेंगे और कहाँ रहेंगे, नितान्त अनावश्यक है। प्रकृति स्वयं मृष्टिकी अनर्गल वृद्धि पर नियन्त्रण रखती है। सर्पिणो एक साथ ही हजारों अंडे प्रदान करती है। यदि उन अंडोंसे एक एक सर्प उत्पन्न हो और वे भी इसी तरह वंश वृद्धि करें, तो कुछ ही दिनोंमें

-दाम्पत्य- विज्ञान-

समूची पृथ्वी सर्पमय हो जाय, परन्तु प्रकृतिकी लीला ऐसी विचित्र है, कि सर्पिणी स्वयं अपने अंडांका खा डालती है। शायद ही एक आधा अंडा बच रहता है और उससे एक आधे सर्पका जन्म होता है।

इसी तरह मछलियां और अन्यान्य जलचर भी हजारों अंडे प्रसव करते हैं, परन्तु वहां यह हाल है, कि बड़े जल चर छोटे :चलचरोंको खा डालते हैं, अतः उनकी वंशवृद्धि नहीं होने पाती। यदि एक कबूतरका जोड़ा बराबर अण्डा देता रहे और उन अण्डोंसे बराबर कबूतरोंका जन्म होता रहे तथा वे सभी अनवरत रूपसे वंशवृद्धि करते रहें तो कुछ ही दिनोंमें यह पृथिवी और :आकाश कबूतरोंसे भर जाय, परन्तु ऐसा नहीं होता। प्रकृति बहुधा उनके अण्डोंको ही नष्ट कर देती है। इसके बाद अनेक पशु पक्षी उनको अपना शिकार बनाते हैं। फल यह होता है, कि संसारमें उनकी संख्या हदसे अधिक नहीं होने पाती।

पशुओंमें भी यही हाल है। उनके बच्चे भी मर जाते हैं अथवा शिकार बनाये जाते हैं। अन्यथा उन्हें भी रहनेके लिये स्थान मिलना असम्भव हो जाय। पशु पक्षियोंकी जाने दीजिये एक वृक्षका उदाहरण लीजिये। आम, नीम, पीपल या बटवृक्षमें कितने फल लगते हैं।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

प्रत्येक फलमें बीज और बीजमें उत्पादक शक्ति होती है। यदि वे सभी निर्विघ्न रूपसे अङ्कुरित हो उठें और उनसे वृक्ष तैयार होने लगें, तो यह पृथिवी उनके लिये भी यथेष्ट स्थान नहीं दे सकती। परन्तु प्रकृति यह कार्य निर्विघ्न रूपसे नहीं होने देती। वह स्वयं अनेक प्रकारसे, अनेक बहानोंसे, अनेक रूपसे उनका नाश कर देती है। यही हाल मानव-समाजका है। यदि निर्विघ्न रूपसे निर्द्वन्द्व होकर सब लोग वंशवृद्धि करते रहें, तो इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिकोंकी बात आँखोंके सामने आ सकती है। परन्तु प्रकृति इस प्रक्रियामें बाधा देनेके लिये स्वयं यत्नशील रहती है। वह अनेक मनुष्योंको बुरी आदतोंमें डाल कर इस तरह रोगी बना देती है, कि वे सन्तानोत्पत्तिका कार्य ही नहीं कर सकते। इसके बाद जो लोग इस कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वे तथा उनकी सन्तान नाना प्रकारके रोगोंसे ग्रसित रहती है। प्लेग, हैजा और महामारी आदि ऐसी-ऐसी बीमारियाँ चलती हैं, कि एक साथ ही लाखों मनुष्योंका सफाया हो जाता है। इसके अतिरिक्त बढ़ी हुई सृष्टिको परिमित बनानेके लिये प्रकृति और उपायोंसे भी काम लेती है। कहीं अति वृष्टिके कारण जल-प्रलय उपस्थित हो जाता है, कहीं जापान

-दाम्पत्य- विज्ञान-

और इटालीको तरह भूकम्प और ज्वालामुखी फट पड़ते हैं, कहीं अकाल पड़ जाता है और कहीं युरोपकी भाँति महासमराग्रिमें लक्षावधि मनुष्य स्वाहा हो जाते हैं। इस तरह क्या मनुष्य, क्या पशु पक्षी और क्या कीट पतंग—चाहे जितनी वंशवृद्धि करें, प्रकृति किसी न किसी प्रकार उनका नाश कर उन्हें परिमित बना देती है। यह किसी तरह भी उन्हें निश्चित परिमाणसे अधिक नहीं बढ़ने देती। उसके इस कार्यमें कोई बाधा नहीं दे सकता।

परन्तु मनुष्य बड़ा बुद्धिमान प्राणी है। वह अनादि कालसे प्रकृतिका अपने वश करनेकी चेष्टा कर रहा है। प्रकृति और उसके बीच सदैव युद्ध हुआ करता है। अनेक बार वह प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अपना काम निकाल लेता है। इसीलिये आज यह प्रश्न उपस्थित है, कि अधिक वृद्धोंको उत्पन्न कर, उन्हें प्रकृतिका शिकार क्यों बनाया जाय ? क्यों न उतने ही वच्चे उत्पन्न किये जायें, जितने संसारमें निर्विघ्न रूपसे रह सकें और अपनी जीवन यात्रा सानन्द समाप्त कर सकें ? क्यों न उन वृद्धोंका उत्पन्न करना बन्द कर दिया जाये, जिन्हें प्रकृति किसी न किसी बहाने कालके कराल गालमें भोंक देती है ?

हम वैज्ञानिकोंकी यह बात मानते हैं। प्रकृतिसे

-दाम्पत्य- विज्ञान-

युद्ध करना अनुचित नहीं। मनुष्य पद पद पर उससे युद्ध करता है। यदि हम प्रकृतिसे युद्ध न करें, तो किसी तरह संसारमें रह ही नहीं सकते। जन्म ग्रहण करते ही वह हमें स्वर्गका रास्ता दिखा दे। परन्तु हम उसके प्रत्येक वारका प्रतिकार करते हैं। जिस तरह होता है, अपनी रक्षा करते हैं। कपड़े पहन कर शीत, वायु, वर्षा और धूपसे शरीरको बचाते हैं, मकान बनाकर सुरक्षित रहनेकी चेष्टा करते हैं और अन्न जल, फल फूल एवम् कन्द मूल आदि वस्तुओंको काममें लाकर जीवन धारण करते हैं। इसी तरह :प्रकृतिसे संग्राम करते हुए हम अग्रसर होते हैं। अन्तमें जब हम प्रकृतिके वारोंका प्रतिकार नहीं कर सकते, तब वह हमको दवा लेती है और हमारी जीवन यात्राका अन्त आता है। इसीको लोग जीवन-संग्राम कहते हैं।

बिना प्रकृतिसे युद्ध किये हम संसारमें आगे बढ़ ही नहीं सकते, इसलिये प्रकृतिसे युद्ध करना अनुचित नहीं, परन्तु हमें यह भली भाँति सोच लेना चाहिये, कि हम अपनी चेष्टामें :सफल मनोरथ होंगे या नहीं। यदि हम इन वैज्ञानिकोंकी बात पर ध्यान न दें और स्वच्छन्दता पूर्वक प्रजोत्पत्ति करते रहे, तो हमें यह देखना चाहिये,

—दाम्पत्य-विज्ञान—

कि उससे हमें क्या लाभ या हानि होगी। वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अधिक बच्चे उत्पन्न होने पर निम्नलिखित कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है:—

- (१) मातापिताका स्वास्थ्य और यौवन नष्ट हो जाता है।
- (२) रोगी और दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती है।
- (३) बच्चे अधिक हो जानेके कारण उनका समुचित लालन-पालन नहीं हो पाता।

(४) धनाभावके कारण बच्चोंको खिलाना पिलाना और पढ़ाना लिखाना कठिन हो जाता है। फलतः प्रजा दिन प्रति दिन हीन होती जाती है।

(५) बच्चोंकी बढ़, धनका अभाव और स्वास्थ्यकी खराबीके कारण जीवन भार हो जाता है—इत्यादि।

इन सब बातों पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि अधिक सन्तान होनेसे जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, वे खासकर तीन ही हैं—माता पिताका स्वास्थ्य नष्ट होना, बच्चोंका दुर्बल होना और धनाभावके कारण जीवन भार मालूम होना। अन्यान्य बातें इन्हीं तीनोंके अन्तर्गत हैं, अतः हम केवल इन्हीं पर विचार करेंगे।

मातापिताका स्वास्थ्य—प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन सभी वैज्ञानिकोंका मत है, कि अधिक

- दाम्पत्य-विज्ञान -

सन्तान होनेसे मातापिताका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। पाश्चात्य विद्वानोंने इसका प्रतिकार करनेके लिये कई उपाय खोज निकाले हैं। हम गर्भाधानके अध्यायमें पहले ही कह चुके हैं, कि गर्भाशय तक वीर्य पहुंचने और रजोडिम्बके साथ शुक्रकीटका संयोग होनेपर ही गर्भस्थिति होती है। वैज्ञानिकोंने इस कार्यमें बाधा देनेके लिये कई प्रकारकी रबरकी थैलियां तैयार की हैं, जिनको पहन लेनेसे शुक्रकीट निर्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुंच सकते। इसके अतिरिक्त ऐसी शस्त्र क्रियाएँ भी खोज निकाली गयीं हैं, जिनके प्रयोगसे स्त्रियोंकी गर्भधारण-शक्ति नष्ट हो जाती है। इन सब बातोंमें वैज्ञानिकोंका यही उद्देश्य है, कि स्त्री पुरुष निःसङ्गोच भावसे सहवास कर सकें, परन्तु उन्हें सन्तान न हो।

किन्तु हम इन उपायोंका अवलम्बन करना ठीक नहीं समझते। रबरकी थैलियाँ व्यवहार करनेपर भी इस बातका विश्वास नहीं दिलाया जा सकता, कि गर्भ संचार हो ही नहीं सकता। व्यवहारमें जरा भी गड़बड़ होते ही गर्भ रह जाता है। साथही अनेक अवस्थाओंमें उनके व्यवहारसे रोग भी उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना रहती है। फिर भी यदि हम मान लें, कि उनकी सब बातें जैसी वे कहते हैं, वैसी ही हैं और उनके कथनानुसार प्रक्रियायें करने पर

-दाम्पत्य-विज्ञान-

गर्भस्थिति हो ही नहीं सकती, तो प्रश्न यह है, कि ऐसा क्यों किया जाय ? क्या इससे स्वास्थ्य और यौवन सुरक्षित रह सकता है ?

भारतीय वैज्ञानिकोंका तो अटल सिद्धान्त है, कि “मरणं बिन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्” । मनुष्यके शरीरमें वीर्य ही सार वस्तु है । उसीकी रक्षापर स्वास्थ्य यौवन और बल वृद्धि अवलम्बित हैं । जब उसीकी रक्षा न होगी तब स्वास्थ्य कैसे सुरक्षित रह सकता है ? पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल गर्भ रोकनेका उपाय बतलाते हैं, परन्तु उससे वीर्यपातके कारण स्वास्थ्यकी जितनी हानि सम्भव है, उसमें तो किसी प्रकारकी कमी हो ही नहीं सकती । हां, स्त्रियोंको कुछ लाभ अवश्य हो सकता है । उन्हें गर्भ-धारण और प्रसवके कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह न उठाना पड़ेगा । इससे उनके स्वास्थ्यमें कुछ वृद्धि हो सकती है । परन्तु पुरुषोंकी दशा अधिक शोचनीय हो जायगी । न उन्हें गर्भसञ्चार होनेका भय रहेगा, न गर्भावस्थाके कारण गर्भिणीसे ही दूर रहना पड़ेगा । ऐसी दशामें वे अपेक्षाकृत अधिक वीर्य नष्ट कर अपना स्वास्थ्य खो बैठेंगे । पाश्चात्य देशोंकी महिलायें इस अवस्थामें आनन्द मना सकती हैं, परन्तु पतिको ही अपना जीवन-

—दाम्पत्य-विज्ञान—

सर्वस्व माननेवाली भारतीय महिलायें स्वयं स्वस्थ रहना और पतिको रोगी बनाये रखना कदापि पसन्द नहीं कर सकतीं ।

भारत और युरोपकी सामाजिक परिस्थितिमें भी जमीन आसमानका अन्तर है । युरोपकी सभी बातोंका अनुकरण हमारे लिये एक समान लाभदायी नहीं हो सकता । कृत्रिम उपायों द्वारा गर्भावरोध करना हिन्दू-समाजके लिये नितान्त हानिकर है । यहाँके लिये ऋषि मुनियोंके ही नियम अधिक लाभदायी और उपयुक्त हैं । उन्होंने स्वास्थ्य रक्षा और गर्भावरोधके लिये इन्द्रिय निग्रह किंवा ब्रह्मचर्य धारण करनेका आदेश दिया है । इससे वीर्यरक्षा, स्वास्थ्य रक्षा और गर्भावरोध सभी कुछ हो सकता है । केवल क्षणिक आनन्दके लिये वीर्यका अपव्यय करना किसी तरह ठीक नहीं । पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका तरीका काममें लानेसे न केवल वीर्य ही नष्ट होता है, बल्कि निरंकुशता और व्यभिचार भी बढ़ सकता है, इसीलिये वह भारतवासियोंके लिये वाञ्छनीय नहीं ।

अब रही हीन सन्तान और धनाभावकी बात । यह दोनों प्रत्येक भारतवासीके लिये परम उपयोगी और विचारणीय प्रश्न है । वैज्ञानिकोंका यह कथन बिलकुल

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ठीक है, कि हम लोग इसी तरह सन्तानोत्पत्ति करते रहे, तो संसार अल्पजीवी और दुर्बल मनुष्योंसे पूरित हो जायगा और प्रकृति बड़ी निर्दयताके साथ उनका संहार कर डालेगी।

भारतवासियोंकी सन्तान कितनी हीन होती चली जा रही है, इस सम्बन्धमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। बालकोंकी मृत्यु संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। प्रतिशत पचास बच्चे भी अपना शैशवकाल अतिक्रमणकर संसारकी हवा नहीं खा सकते। बहुतेरे जन्मते ही मर जाते हैं और बहुतेरे कुछ दिनतक संसार-यात्रा करनेके बाद अपनी इहलोक लीला समाप्त करते हैं। जो जीवित रहते हैं, उनमें स्वस्थ और दृष्टपुष्ट बच्चे बहुत ही कम दिखाई देते हैं। जिधर ही देखिये उधर ही रोगी, दुर्बलेन्द्रिय और अस्थि-कंकालवत् क्षीणकाय बच्चोंका दल दृष्टिगोचर होता है। उनका न केवल शरीर ही दुर्बल होता है, बल्कि मनकी दशा और भी खराब होती है। साहस, धैर्य, निर्भीकता आदि सभी गुणोंका उनमें अभाव पाया जाता है। बुद्धि इतनी मोटी होती है, कि वे बिना किसीके बताये आपोआप कोई काम ही नहीं कर सकते। इससे अधिक हीनावस्था और क्या हो सकती है? ऐसे बच्चे अपना और अपने

-दम्पत्य-विज्ञान-

देशका श्रेय-साधन कैसे कर सकते हैं? उन्हें अपनी जीवकाहीके लिये जब पराया मुंह ताकना पड़ता है, तब उनके द्वारा कोई महत्कार्य होनेकी आशा कैसे रखी जा सकती है?

बच्चोंकी यह हीनता मातापिताकी हीनता पर ही अवलम्बित रहती है। बच्चोंको भला या बुरा बनाना उनके हाथकी बात है। जो यथानियम सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनके बच्चे भले ही होते हैं, परन्तु जो लोग बिना किसी बातका बिचार किये, इस कार्यको करते हैं, उनकी सन्तान भी वैसी ही हीन होती चली जाती हैं। दुर्भाग्यवश भारत-वासियोंकी आर्थिक स्थिति कम शोचनीय नहीं। यहाँ काम करनेवालोंकी अधिकता और कामकी कमी रहती है। लोगोंको नौकरीके अतिरिक्त और कोई व्यवसाय सुरूता ही नहीं। पढ़े लिखे और अनपढ़, शिक्षित और अशिक्षित—सभी सेवा-वृत्तिके लिये लालायित रहते हैं। नौकरीके लिये कहीं एक स्थान खाली होता है, तो सत्तर अर्जियाँ जा पड़ती हैं। एक मनुष्य जिस कामको १० रुपयेमें करता है, वही काम दूसरा मनुष्य ४० हीमें कर देनेको तैयार रहता है। इन सब बातोंके कारण जीविकाकी समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है।

- दाम्पत्य - विज्ञान -

एक मनुष्यको अपनी आमदनीसे अपने परिवारका निर्वाह करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। परिवारकी जाने दीजिये, केवल पति पत्नी - दो जन भी भर पेट दोनों वक्त भोजन नहीं कर सकते। ऐसी दशामें जब उनके यहाँ एकके बाद एक सन्तान उत्पन्न होने लगती है, तब उनका जीवन न जाने कितना अशान्त और कितना दुःखी हो जाता है। बच्चोंके लिये पुष्टिकर भोजन और आवश्यक वस्त्रोंका जुगाड़ करना भी उनके लिये असम्भव हो जाता है। मातापिता स्वयं एक वक्त खाते हैं और अपने बच्चोंको दोनों वक्त खिलाते हैं। स्वयं फटे कपड़ोंमें गुजारा करते हैं, परन्तु उन्हें अच्छे कपड़े पहनाते हैं। किन्तु इतनेहीसे मातापिताके कर्त्तव्यकी इति श्री नहीं हो सकती। उनके शिरपर बच्चोंको पढ़ा लिखा कर योग्य बनानेकी जिम्मेदारी भी रहती है। परन्तु यह कार्य एकदम उनकी शक्तिके बाहरका होता है। उच्च शिक्षाका देना तो दूर रहा, वे उन्हें उच्चर ज्ञानकी प्रारम्भिक शिक्षा भी नहीं दिला सकते। यही कारण है, कि आज भारतमें लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जो काला अक्षर भैंस बराबर समझते हैं। जहां भोजन हीकी समस्या बड़ी कठिनाईके साथ हल होती है, वहां शिक्षा दीक्षाका प्रश्न कैसे हल हो सकता है? एक आध

-दाम्पत्य- विज्ञान-

सन्तान हो, तो उसके लिये किसी तरह प्रबन्ध किया भी जा सकता है, परन्तु यहां तो एकके बाद एक सन्तान उत्पन्न होने लगती है और देखते ही देखते उसका नम्बर आघे या चौथाई दर्जन पर जा पहुंचता है। यह वृद्धि कब-तक होती रहेगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं होता। ऐसी दशामें निर्धन माता पिताओंके लिये उनके भोजन और शिक्षा दीक्षाका प्रश्न बड़ा ही विकट हो पड़ता है। बे बच्चेकी अवस्था आठ दश वर्षकी होते ही, यह सोचने लगते हैं, कि अब इसे किसी व्यवसायमें लगा दिया जाय तो अच्छा है। नौकरीके अतिरिक्त और व्यवसाय उन्हें सूझ ही कैसे सकता है? प्रायः सभी व्यवसायोंमें पूंजी और बुद्धिबलकी आवश्यकता पड़ती है। इन दोनोंका पहलेसेही अभाव रहता है, अतः बच्चे भी उसी छोटी अवस्थामें जब उनके शिक्षा प्राप्त करनेका समय होता है, दासता और सेवा वृत्तिकी विषम शृङ्खलासे जकड़ दिये जाते हैं।

शारीरिक और आर्थिक अवस्था हीन होनेपर भी लोग जब सन्तानोत्पत्तिका कार्य अनवरत रूपसे करते रहते हैं और संसार अयोग्य मनुष्योंसे पूरित हो जाता है, पृथिवी उनके भारसे व्याकुल हो त्राहि त्राहि करने लगती है, तब

-ताम्र-विज्ञान-

प्रकृति संहारका भयानक शस्त्र धारण कर सृष्टिको परिमित बना देती है। दुर्गिक्ष, जलामय, प्लेग प्रभृति रोग और दुर्घटनाओंका प्रादुर्भाव इसीलिये होता है। यों तो संसारमें जन्म ग्रहण करनेवाले समस्त प्राणियोंको एक न एक दिन मृत्यु-शय्यापर शयन करना ही पड़ता है, परन्तु जब प्राकृतिक वार होता है, तब सब लोगोंकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होती—जैसे गेहूँके साथ उसमें रहनेवाला घुन भी पिस जाता है, उसी तरह अयोग्य और हीन मनुष्योंके साथ न जाने कितने योग्य और गुणी मनुष्योंका भी सर्वनाश हो जाता है। प्रकृति जिस समय नाश करनेके लिये खड्गहस्त हो मैदानमें उतरती है, उस समय वह भले बुरे और योग्य अयोग्यका ध्यान नहीं रखती। जो उसकी चपेटमें पड़ जाता है, उसीका अन्त हो जाता है। इससे देशका बड़ा अनिष्ट होता है। जिन मनुष्योंकी आवश्यकता रहती है वे चल बसते हैं और जो अकर्मण्य, निरुद्यमी और आलसी होते हैं, वे पड़े रहते हैं। इसी दुरवस्थासे त्राण पानेके लिये इस समय बड़े बड़े वैज्ञानिक भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यदि मनुष्य नियमानुसार सन्तानोत्पत्तिका कार्य करे, तो वह अच्छी सन्तान उत्पन्न

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कर सकता है और यदि अपनी आर्थिक दशापर ध्यान रखते हुए यह कार्य करे तो उन्हें शिक्षित और योग्य भी बना सकता है। हीन सन्तानकी वृद्धि रोकनेकी अपेक्षा उत्तम सन्तान उत्पन्न करना अधिक अच्छा है। जब उत्तम सन्तान उत्पन्न होने लगेगी तब हीन सन्तान आप ही आप कम हो जायेगी। इसलिये लोगोंको गर्भावरोध न कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये। उत्तम सन्तान तभी हो सकती है, जब यह काम यथानियम सम्पन्न हो और सन्तानका यथोचित लालन पालन और समुचित शिक्षा दीक्षाका प्रबन्ध किया जा सके। मातापिताकी शारीरिक और मानसिक अवस्था पर बच्चोंका स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शीलस्वभाव और गुण प्रभृति बातें निर्भर करती हैं और आर्थिक अवस्थापर उनकी शिक्षा दीक्षाका आधार रहता है। इसलिये यदि मातापिताकी शारीरिक मानसिक और आर्थिक दशा अच्छी हो तो उन्हें सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें प्रवृत्त हो देशकी जनसंख्यामें वृद्धि करनी चाहिये अन्यथा ब्रह्मचर्य किंवा इन्द्रिय निग्रह द्वारा हीन सन्तानकी वृद्धि रोकना ही उनके और इस अभागे देशके लिये श्रेयस्कर है। हर हालतमें उतने ही बच्चे उत्पन्न करने चाहियें जितनोंको भली भांति पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया जा सके ताकि उनकी या अपनी जीवन यात्रा

-दाम्पत्य-विज्ञान-

दुःखमय न हो पड़े। इससे अधिक बच्चे उत्पन्न करना, प्रकृति के लिये संहारकी सामग्री प्रस्तुत करना है। हीन सन्तानकी वृद्धि माता पिता, देश और समस्त संसारके लिये हानिकर है, अतः इसपर नियन्त्रण रखना मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य है। यह कार्य सुसन्तानकी वृद्धि द्वारा ही सुचारु रूपसे सम्पन्न हो सकता है, अतः अगले अध्याय में हम इसी विषयपर विचार करेंगे।





उत्तम सन्तान ।



गत अध्यायमें हम बतला चुके, कि वंश-वृद्धि करना मनुष्यमात्रका परम कर्त्तव्य है, परन्तु उसे ऐसी सन्तान-उत्पन्न करनी चाहिये, जो दीन हीन, अल्पायु, निस्तेज, दुर्बलेन्द्रिय और गुणहीन न हो। ऐसे वच्चे संसारमें भाररूप हो पड़ते हैं और प्रकृति उन्हें असमयमें ही कालके कराल-गालमें भोंक देती है। प्रत्येक मनुष्यको ऐसी सन्तानकी वृद्धि रोकनेमें सर्वदा यत्नशील रहना चाहिये। यह वृद्धि दो तरहसे रुक सकती है—(१) उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेसे और (२) इन्द्रियनिग्रहकर सन्तानोत्पत्तिका कार्य रोक देनेसे।

भारतवर्षमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है, जो सन्तति शास्त्रको जानते हैं और यह मानते हैं, कि भली या

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बुरी सन्तान उत्पन्न करना अपने हाथकी बात है। अधिकांश भारतवासी सन्तानको ईश्वरकी देन समझते हैं। उनकी धारणा है, कि सन्तान देना न देना और उसे भली या बुरी बनाना ईश्वरके अधिकारकी बात है। अपठित किंवा अशिक्षित ही नहीं, बल्कि अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे मनुष्योंके मुखसे भी उपरोक्त प्रकारके उद्गार निकलते हुए सुनाई देते हैं, कि भली या बुरी सन्तान उत्पन्न करना स्वयं मनुष्यके अधिकारकी बात है। वह चाहे तो भली से भली और चाहे तो बुरीसे बुरी सन्तान उत्पन्न कर सकता है।

जैसे अच्छा सूत तैयार करनेके लिये अच्छी रुई, निर्दोष चरखा और चतुर कातनेवालेकी आवश्यकता पड़ती है, जैसे अच्छासा खिलौना बनानेके लिये बढ़िया मिट्टी, तरह तरहके रंग और कुशल शिल्पी आदिकी जरूरत पड़ती है और जिस प्रकार अच्छा मकान बनानेके लिये बढ़िया ईंट, बढ़िया चूना और निपुण कारीगरोंकी आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार अच्छी सन्तान उत्पन्न करनेके लिये सभी उपकरण अच्छेसे अच्छे होने चाहिये। जिस प्रकार अच्छे उपकरणोंके अभावसे अच्छी वस्तु नहीं तैयार होती, उसी तरह सन्तान भी अच्छी नहीं होती। किसानको अच्छी फसल

- दाम्पत्य-विज्ञान -

काटनेके लिये न केवल अच्छा खेत, अच्छा बीज और अच्छे औजार आदि उपकरण ही जुटाने पड़ते हैं, बल्कि आदिसे अन्ततक उसकी परिचर्या भी करनी पड़ती है। पानीकी आवश्यकता पड़नेपर पानी और छायाकी आवश्यकता पड़ने पर छाया आदिका प्रबन्ध करना पड़ता है। यह सब करने-बाद ही उसे अपने परिश्रमका फल मिलता है। यदि वह जरा भी कहीं चूक जाता है, तो सभी परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। सन्तानके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात है। चतुर किसानकी तरह दम्पतियोंको भी यह कार्य सुचारु रूपसे बड़ी सावधानीके साथ सम्पादित करना पड़ता है। वीर्य, रज आदि उपकरण और आवश्यक परिचर्या जितने ही परिमाणमें अच्छी होती है, उतने ही परिमाणमें सन्तान भी अच्छी होती है। यदि उपकरण ठीक न हुए और समुचित परिचर्या न की गयी, तो दम्पतियोंका परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है। इसलिये उत्तम सन्तानकी इच्छा रखने-वालोंको सब बातोंपर भलीभाँति विचार करनेके बाद ही इस प्रवृत्तिमें पड़ना चाहिये।

जिस प्रकार कृषि-विज्ञानका ज्ञान किसानके लिये परमावश्यक होता है, उसी प्रकार दम्पतियोंको दाम्पत्य-विज्ञानका ज्ञान होना परमावश्यक है। बिना इस ज्ञानके वे अपने

-दम्पत्य-विज्ञान-

जीवन-संग्राममें आगे बढ़ही नहीं सकते । किंकर्तव्य-विमूढ़ हो पथभ्रष्ट हो जाना उनके लिये अनिवार्य एवम् अवश्यम्भावी है । इसलिये इस कर्ममें प्रवृत्त होनेवालोंको सवप्रथम इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । खेत, बीज और औजार अच्छे न होनेपर, केवल ज्ञानहीके सहारे किसानको जिस-प्रकार सफलता नहीं मिलती, उसी प्रकार उपकरण अच्छे न होनेपर दम्पतियोंको भी हताश होना पड़ता है । पिताका वीर्य, माताका रजोडिम्ब, दोनोंकी शारीरिक स्वस्थता, सन्तानोत्पत्तिकी योग्यता, अंगोंकी परिपूर्णता और पुष्टता—प्रभृति इसके उपकरण हैं । यह जितने ही अच्छे होंगे, सन्तान भी उतनी ही अच्छी होगी । ठीक समयपर न बोनेसे बहुधा बीज अंकुरित ही नहीं होता और यदि अंकुरित होता है, तो वह सुफल नहीं देता । ठीक उसी तरह दम्पतियोंको उचित समयपर गर्भाधान करना होता है । असमयमें सहवास करनेपर या तो गर्भसञ्चार ही नहीं होता और होता है, तो रोगी और दुर्बलेन्द्रिय सन्तान उत्पन्न होती है । इसलिये अच्छी सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको ऋतु-काल और अपनी अवस्था प्रभृति विषयोंपर भी ध्यान रखना चाहिये । बीज बोनेके बाद भी किसान अन्ततक जिसप्रकार उसकी परिचर्यामें संलग्न रहता है, उसी प्रकार दम्पतियोंको

-दाम्पत्य- विज्ञान-

भी सन्तान भूमिष्ट होनेतक आवश्यक परिचर्या करते रहना चाहिये । यह सब करनेपर भी यदि सन्तान अच्छी न हो, तो दैवके शिर दोषारोपण कर लोग खुशीसे सन्तोष मान सकते हैं, इसके पहले कदापि नहीं ।

संसारमें बहुधा यही दिखाई देता है, कि बच्चोंका रंग मातापिताके वर्णानुसार होता है । कन्यापर माताके रंगका और पुत्रपर पिताके रंगका विशेष प्रभाव पड़ता है । परन्तु यह कोई अटल नियम नहीं है । यह भी देखा गया है, कि काले मातापिताओंके बच्चे गोरे और गोरे माता-पिताओंके बच्चे काले उत्पन्न होते हैं । गुणके सम्बन्धमें भी ऐसे ही कतिपय नियम हैं । उन नियमोंके अनुसार ही बच्चोंमें सद्गुण या दुर्गुण दिखाई देते हैं । इस विषयको अधिक स्पष्ट करनेके लिये, निम्नलिखित उदाहरण ही पर्याप्त होंगे ।

स्पेन देशकी एक अमीरजादीके शयनगृहमें एक इथो-पियन मनुष्यका चित्र टँगा था । इथोपियन लोगोंका रंग बड़ा ही काला होता है । वह अमीरजादी कौतूहलवश उसे बारंबार देखा करती थी । उसके मनपर उसका बड़ा प्रभाव था । जब वह गर्भवती हुई, तब भी वरावर उसे देखती रही । यथासमय जब उसने पुत्र प्रसव किया, तब

-दाम्पत्य- विज्ञान-

लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा, कि उस बालकका वर्ण ठीक उस एथोपियनके समान काला है।

एक अन्य युरोपीय महिलाके यहां एक आफ्रिकनका चित्र था। आफ्रिकनोंके बाल जन्मसे हो उलझनदार और घुंघराले होते हैं। युरोपियन लोग वैसे बाल बहुत पसन्द करते हैं। वह महिला भी उसे पसन्द करती थी और बारबार देखा करती थी। इस क्रियाका प्रभाव उसके गर्भ-पर पड़ा। उसने जिस बालकको जन्म दिया, उसके बाल ठीक उस आफ्रिकनके समान घुंघराले और उलझनदार थे।

एक एथोपियन रानीने इसी प्रकार एकबार एक गोरे बालकको जन्म दिया था। जाँच करनेपर मालूम हुआ था, कि उस रानीको उज्ज्वल वर्ण और उज्ज्वल चीजें बड़ी प्रिय थीं। वह अहर्निश उन्हींका ध्यान करती थी। इसी-लिये उसके पुत्रका वर्ण उज्ज्वल था।

बच्चोंके रूप रङ्ग विषयक यह बात न केवल मनुष्योंमेंही पाई जाती है, बल्कि पशुओंमें भी देखी गई है। फीजके लिये जब एक ही रङ्गके घोड़ोंकी आवश्यकता होती है, तब गर्भाधानके समय उनके सामने बादामी या काले रङ्गके पड़दे टांग दिये जाते हैं। ऐसा करनेसे सबके सब बछेड़े उसी रङ्गके उत्पन्न होते हैं।

[२२५]

-दाम्पत्य- विज्ञान-

डाकूर पी० एफ० सिक्षकने इस बातको एकबार भली-भांति अजमाया था । उन्होंने कई खरगोश पाल रखे थे । वे खरगोश जिस स्थानमें रहते थे, उस स्थानके चारों ओर उन्होंने नीले रङ्गके पड़दे लगा रखे थे । जमीन पर भी नीले रंगकी चटाई बिछी हुई थी । खरगोश सारादिन उसी चटाईपर दौड़ा करते थे । वे जिधर हा देखते, उधर ही उन्हें नीला रङ्ग नजर आता था । अन्तमें जब दो खरगोशोंने बच्चे दिये तब देखा गया, कि उन बच्चोंका रंग नीला है । हम समझते हैं कि पाठकोंको अब इसका कारण बतलानेका आवश्यकता नहीं रही ।

ईसाइयोंके धर्मग्रंथ बाईबलमें भी इसका एक उदाहरण अंकित है । उसमें लिखा है, कि लेवलने एकबार याकुबको धोखा दिया । उसके बदलेमें उसने याकुबको वचन दिया, कि यदि वह सात वर्षतक उसके भेंड़ बकरे चरा दे, तो वह उसे अपनी एक कन्या विवाह देनेके अतिरिक्त, उतने समयमें उन भेंड़ोंके जितने बुंदकीदार बच्चे होंगे, वे सब उसे दहेजमें दे देगा । लेवलने समझ रक्खा था, कि सात वर्षमें शायद ही दोचार ऐसे बच्चे हों । परन्तु याकुबने एक ऐसी युक्ति खोज निकाली, जिससे सब बच्चे बुंदकीदार ही उत्पन्न हुए और लेवलको अपने कामका यथोचित दण्ड भी मिला ।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सर्वप्रथम याकूबने उन भड़कड़ोंको पानी पिलानेके लिये ऐसे बरतन तैयार कराये, जो सब ओरसे बुन्दकीदार थे। बादको उसने मादाओंको अलगकर एक स्थानमें बाँध दिया। दिनभर बाँध रखनेपर, जब वे अत्यन्त तृषाकुल हुईं तब उसने उन्हें नरोँके बीचमें उन्हीं बुन्दकीदार बर्तनोंमें पानी पीनेके लिये छोड़ दिया। चित्तकी एकाग्रताके कारण ये बुन्दकियाँ मादाओंके मनमें बस गयीं। निदान उस समय गर्भाधान होनेपर जिन्नी भेड़ोंने बच्चे दिये वे सब बुन्दकीदार हुए। याकूबने यही क्रम अन्ततक जारी रक्खा और आसानीके साथ लेवलसे बाजी मार ली।

मनपर प्रभाव पड़नेसे बच्चोंका रङ्ग इसी प्रकार बदल जाता है। इस कथनकी पुष्टिमें अभी और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। डाक्टर फाउलर लिखते हैं, कि एक परमविपरी और लम्पट पुरुषने एक कंगालस्थितिकी सुन्दरी के साथ विवाह किया। उनके साथ ऐसी शर्त थी, कि वह उसे कभी कष्ट न देगा। साथ ही यह भी स्थिर हुआ था, कि यदि वह पुरुष किसी दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध रखे, तो उसमें उस स्त्रीको कोई आपत्ति न होगी। थोड़े दिनोंके बाद उस पुरुषने एक दाई नौकर रखी। दाईका रंग काला परन्तु अवस्था तरुण थी। उस पुरुषने उसके साथ

-दास्य-विज्ञान-

अपना सम्बन्ध स्थापित करनेका विचारकर उसे बहुत कुछ सप्रभाया, परन्तु वह इतनी धर्मपरायणा थी, कि लेश भी विचलित न हुई। उसने अनेक प्रकारसे प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ प्रमाणित हुए। अन्तमें एकदिन शामको उसने उस दाईसे बड़ा हो आग्रह किया, परन्तु वह किसी प्रकार उसकी इच्छा पूर्ण करनेको तैयार न हुई। पुरुष जब वहाँसे निराश हुआ; तब उसी उत्तेजित दशामें अपनी स्त्रीके पास गया। सहवास करनेपर स्त्री गर्भवती हो गयी। यथा-समय उसने जो पुत्र प्रसव किया उसका रंग ठीक उस दासीके समान था। जो लोग अनभिज्ञ थे, वे उसे उस दासी-काही पुत्र समझते थे। इस उदाहरणमें यह बात दिखाई देती है, कि मातापिताका वर्ण उज्ज्वल होनेपर भी पिताकी मनःस्थितिके कारण बालक श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ। पिताकी मनःस्थितिका बालकके वर्णपर पूरा पूरा प्रभाव पड़ा।

विद्वान् डाक्टर लौ ऐसा ही दूसरा उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि एक सुन्दर और सुनहले केशवाले युरोपियनने एक ब्राझेलियन सुन्दरीके साथ विवाह किया। परन्तु उस स्त्रीसे उसे एक भी सन्तान न हुई। ब्राझेलियन सुन्दरीके शरीर और केशोंका रंग काला था। दैवात् बीस वर्षके बाद उसका शरीरान्त हो जाने पर उसने एक युरो-

-ताम्रपथ-विज्ञान-

पियन सुन्दरीका पाणि-ग्रहण किया। उस स्त्रीसे उसे जो बालक हुआ, उसका डीलडौल, आकारप्रकार और रूप रंग आदि सभी बातें उस ब्राझेलियन सुन्दरीके समान थीं। इस बच्चेके माता पिता अंग्रेज होने पर भी उन्हें ब्राझेलियन जैसा पुत्र हुआ, इसका कारण यह था, कि वह अंग्रेज अपनी पूर्व पत्नीसे, जिसकी मृत्यु बीस वर्ष पहले हो चुकी थी, बड़ा ही प्रेम करता था। जब जब वह अपनी नवविवाहिता वधूके साथ सहवास करता, तब तब उसे अपनी स्वर्गवासिनी पत्नीका स्मरण हो आता था। इसी मनःस्थितिके कारण उसे वैसी सन्तान हुई।

एक सज्जन गाने बजानेमें बड़े ही निपुण थे। उन्हें संगीत विद्याका इतना शौक और उसपर इतना अनुराग था कि वे इसे न जाननेवालोंको पशुवत् ही समझते थे। दैवयोगसे उन्हें जो स्त्री मिली, वह इस विषयसे बिल्कुल ही अनभिज्ञ थी। उसे संगीत विद्याका एक अक्षर भी मालूम न था। जब उसने देखा, कि संगीत न जाननेवाले मनुष्य मेरे पतिको अप्रिय मालूम होते हैं, तब वह ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी, कि मेरे एक भी सन्तान न हो। ऐसा करनेका कारण यह था, कि वह समझती थी कि मैं संगीतसे अनभिज्ञ हूँ, अतः मेरे जो सन्तान होगी, वह भी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ऐसी ही अनभिज्ञ होगी और इस विषयकी अनभिज्ञताके कारण पतिका उस पर प्रेम न होगा। कुछ दिनोंके बाद उसे संगीत सीखनेकी इच्छा हुई। पतिने उसे इसके लिये उत्साहित किया। निदान वह गाने बजानेकी चेष्टा करने लगी। जैसे बनता वैसे गाया बजाया करती। इसी स्थितिमें उसे गर्भ रह गया। यथासमय उसने एक पुत्रको जन्म दिया। कुछ वर्षोंके बाद पुनः एक पुत्र हुआ। उनके बड़े होने पर देखा गया, कि वे अपने पितासे भी बढ़कर गायन वादनमें निपुण हैं। इस उदाहरणसे मालूम होता है, कि माता यद्यपि संगीत विद्यामें निपुण न थी, परन्तु निपुणता प्राप्त करनेकी उसके हृदयमें प्रबल इच्छा थी और उसी इच्छा-शक्तिके कारण उसके पुत्र संगीतकलामें निपुण हुए।

डाक्टर केलोग एक और उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि रोद शहरका एक न्यायाधीश ठींगना, कुरूप और कुचड़ा था। उसके यहां जिस बालकका जन्म हुआ, वह भी वैसा ही कुरूप और ठींगना था। उसे देख कर न्यायाधीशको बड़ा क्षोभ हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा कि यदि सब बच्चे ऐसे ही हुए तो मेरा वंश ही खराब हो जायगा। अतः इनके रूप रंग बदलनेकी चेष्टा करनी

-दाम्पत्य-विज्ञान-

चाहिये । निदान वह गैलन नामक एक विख्यात डाकृरके पास गया और उससे सलाह पूछी । डाकृरने सलाह दी, कि अपने शयन-गृहमें शय्याके आस पास सुन्दरतासे सुन्दर तीन पुतले सजा दो—एक पैताने, एक शय्याकी दाहिनी ओर और एक बायीं ओर रहे । ऐसा करवानेका एकमात्र उद्देश्य यही था, कि न्यायाधीशकी स्त्री हरवक्त उन पुतलों-को देख सके और उनका उसके मनपर गहरा प्रभाव पड़े । न्यायाधीशने डाकृरकी आज्ञा शिरोधार्य की । फल यह हुआ, कि उसकी दूसरी सन्तान आशातीत सुन्दर हुई ।

लोग आमतौरसे मानते हैं, कि माता पिताके समान ही उनकी सन्तान होती है, परन्तु यह बात जिस साधारण ढंगसे कही जाती है उतनी साधारण नहीं है । उपरोक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट मालूम होता है, कि माता पिता चाहे जैसे हां परन्तु गर्भाधान और गर्भावस्थाके समय उनकी जैसी मनःस्थिति होगी, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी । सन्तानके रूप रंग और गुणोंपर माता पिताकी तत्कालीन मनःस्थितिका गहरा प्रभाव पड़ता है । यही कारण है, कि एक ही मा बापके दो लड़कोंमेंसे एक भला और दूसरा बुरा, एक विद्वान तो दूसरा मूर्ख, एक सद्गुणी और दूसरा दुर्गुणी उत्पन्न होता है ।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

सन्तानको सुन्दर और सद्गुणी बनानेकी जिम्मेदारी पिताकी अपेक्षा माताके शिर पर विशेष रहती है। पिता तो गर्भाधान कर अलग हो जाता है। उसकी मनःस्थिति-का प्रभाव केवल उसी समय पड़ता है, परन्तु माता तो अलग नहीं हो सकती। उसे न केवल गर्भाधानके समय ही अपनी मनःस्थिति ठीक रखनी चाहिये, बल्कि जबतक गर्भ भूमिष्ट न हो तबतक सावधान रहना चाहिये। क्योंकि जब तक बच्चा गर्भमें रहता है, तबतक उसके आचार विचारों-का उसपर असर पड़ता है। अपने यहाँ यह बात प्रसिद्ध है कि वीर अभिमन्युने गर्भावस्थामें ही चक्रव्यूह भेदनकी शिक्षा प्राप्त की थी। लोग इस बातको कपोल कल्पित भले कहें, परन्तु उपरोक्त उदाहरणोंमें जो वैज्ञानिक नियम दृष्टि-गोचर होता है, वह हमें यह बात स्वीकार करनेके लिये बाध्य करता है, कि अवश्य अभिमन्युको गर्भमें शिक्षा मिली होगी। अभिमन्युमें व्यूह-भेदनकी जो निपुणता देखी गई वह गर्भ-स्थ होनेके समय माताकी मनःस्थितिके ही कारण प्राप्त हुई थी। परन्तु वह शिक्षा उसे कब दी गई थी? एकदम अन्तिम समय। ठीक उस समय जब प्रसवकाल उपस्थित था। शिक्षा पूर्ण होते न होते तो अभिमन्युका जन्म भी हो गया। इसलिये कहते हैं, कि गर्भके भूमिष्ट होने तक

-दाम्पत्य- विज्ञान-

माताको सावधान रहना चाहिये, अपनी मनःस्थिति ठीक रखनी चाहिये और भावी सन्तानको सुन्दर और गुणवान बनानेकी चेष्टामें संलग्न रहना चाहिये ।

गर्भावस्थामें माताकी मनस्थितिका गर्भस्थ बालक पर कितना प्रभाव पड़ता है, यह वीर नैपोलियनके उदाहरणसे भी जाना जा सकता है । नैपोलियन जब गर्भमें था, तब उसकी माता अपने पतिके साथ युद्धक्षेत्रमें थी । युद्ध सम्बन्धी बातोंमें बहुधा वह भाग भी लेती थी । उसे घोड़े पर बैठ, हवा खानेका बड़ा शौक था । वह जैसी चतुर और चपल थी । वैसी ही शक्ति सम्पन्न और बहादुर भी थी । वह भयानक स्थानोंमें भी अपने पतिका साथ न छोड़ती थी । संकटके समय साहस करनेमें उसे लेशमात्र भी भय किंवा संकोच मालूम न होता था । बल्कि ऐसे कार्य करनेमें उसे बड़ा आनन्द आता था । उसके पतिकी भी यही स्थिति थी । इसी स्थितिमें गर्भावधान और गर्भ-पोषण हुआ । फलतः नैपोलियन जैसे परम प्रतापी, अतुल विक्रमी, साहसी, निडर और महत्वाकांक्षी नररत्नका जन्म हुआ । गर्भावस्थामें माताकी शारीरिक और मानसिक स्थितिका गर्भ पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसके लिये यह एक ही उदाहरण पर्याप्त है ।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

आजकलके माता पिताओंको इस ओर ध्यान देना परमावश्यक है। जो माता पिता सदाचारो, स्वधर्मपरायण विद्याविलासी, दयार्द्र और परोपकारी होते हैं, उन्हें वंसी ही सद्गुणी सन्तानकी प्राप्ति होती है। अथच जो माता पिता विषय लम्पट, अधर्मी, कुकर्मो और अज्ञानी होते हैं उनकी सन्तान उन्हींके अनुरूप होती है। बालकोंके समस्त दोष और गुण माता पिता पर ही अवलम्बित हैं।

सुन्दर और सद्गुणी सन्तान किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है, इसके लिये उपरोक्त उदाहरण ही पर्याप्त हैं, तथापि कुछ आवश्यक बातें हम और भी अंकित कर देना उचित समझते हैं। संसारका यह अटल नियम है, कि सुन्दर और उज्ज्वल वस्तुओंका ओर मनुष्यकी दृष्टि सर्व प्रथम आकर्षित होती है। सुन्दर वस्तु मनुष्यके हृदयमें जितनी जल्दी प्रभाव जमा लेती है, उतनी जल्दी बुरी वस्तु नहीं जमा सकती। मान लीजिये, कि मनुष्यके दो स्त्रियाँ हैं। एकका रंग गोरा और दूसरीका काला है। ऐसी स्थितिमें निश्चित है, कि सर्व प्रथम पुरुषका हृदय गोरी स्त्रीकी ओर ही आकर्षित होगा। इसका कारण यह है, कि गोरा रंग अधिक सुन्दर और नेत्रप्रिय मालूम होता है। विश्व विख्यात डार्विन साहबका कथन है, कि पुष्प और

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पशुओंकी सन्तानोंमें सफेद रंग आसानीके साथ उतर आता है। यदि गोरे मनुष्य काली स्त्रियोंके साथ सम्भोग करते हैं, तो बहुधा गोरे ही बालक उत्पन्न होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है, कि गोरे रंगसे मनुष्य-जातिका मन और हृदय विशेष रूपसे प्रभावान्वित होता है।

यदि सुन्दरता ही माता पिताके मनका लक्ष्य होती है, तो निःसन्देह उन्हें सुन्दर सन्तानकी प्राप्ति होती है। सुन्दर वस्तुओंके दर्शनसे, मनुष्य जातिमें बसी हुई सुन्दरताकी ओर विशेष ध्यान देनेसे, प्राकृतिक सुन्दरताका अवलोकन करनेसे, बारंबार सुन्दर चित्र देखनेसे, मनुष्य स्वयं सुन्दर हो सकता है और अपनी सन्तानको सुन्दर बना सकता है। रोमके न्यायाधीश आदिके उदाहरण इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अनेक बार हमारे देशकी स्त्रियाँ विकृत आकारकी सन्तान प्रसव करती हैं। किसीके कपालमें आँख होती है, किसीकी खोपड़ीमें दाँत होते हैं, किसीके चार हाथ होते हैं और किसीके और कोई अंग कम या अधिक होते हैं। ऐसा क्यों होता है? केवल इसीलिये, कि उनके पिता और खासकर मातायें गर्भाधानके समय अपनी मनःस्थिति ठीक नहीं रखतीं। इसीलिये उन्हें विकृत सन्तान उत्पन्न होती है। माता पिताओंको चाहिये, कि गर्भाधान और गर्भा-

-दाम्पत्य- विज्ञान-

वस्थाके समय अपने मनपर बुरी वस्तुओंका प्रभाव न पड़ने दें । विचित्र आकार-प्रकारके देव-देवियोंके दर्शन और कथा कहानीके श्रवणसे भी सन्तान विकृत हो सकती है ।

डाक्टर द्राल सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेके विषयमें लिखते हैं, कि जब मानसिक और शारीरिक स्थिति बहुत अच्छी हो तभी सुन्दर सन्तानका होना सम्भव है इसलिये यदि सुन्दर सन्तान उत्पन्न करना हो, तो माता-पिताको अपना मन शान्त, स्थिर और अच्छी दशामें रखना चाहिये । स्नानपानमें मर्यादा न उल्लंघन करनी चाहिये । हृदयको स्वच्छ रखे, शरीर मैला न रहे और सब कार्योंमें नियमितताका ध्यान रहे । जिस मनुष्यके अंग सम्पूर्ण सुदृढ़ एवम् पुष्ट होते हैं, वही स्वस्थ रह सकते हैं । और स्वस्थ मनुष्य ही सुन्दर सन्तान उत्पन्न कर सकता है । अतः यह आवश्यक है, कि जो माता-पिता सुन्दर सन्तानका मुख देखना चाहें, उन्हें किसी प्रकारके दुर्गुण, दुर्व्यसन किंवा अन्य प्रकारोंसे अपना स्वास्थ्य नष्ट न करना चाहिये । डाक्टर द्रालका कथन है, कि Parents who are in comparatively good condition when they cohabit for reproduction, will frequently have children more beautiful than themselves ; while on the

-दाम्पत्य- विज्ञान-

otherhand parents who are in the condition when they beget children are represented in the next generation by specimens of the genus homo more ill-looking than they are themselves" अर्थात् सन्तानोत्पत्तिके समय यदि माता पिता-की शारीरिक और मानसिक स्थिति अच्छी होती हैं, तो बहुधा उनकी अपेक्षा अधिक सुन्दर सन्तान उत्पन्न होती है, परन्तु इसके विपरीत सन्तानोत्पत्तिके समय यदि उनकी मनःस्थिति बुरी होती है, तो सन्तान उनकी अपेक्षा भी बुरी उत्पन्न होती है ।

मनःस्थिति ठीक रखनेके लिये पति पत्नीमें अकृत्रिम प्रेम होना चाहिये । यदि दोनोंका मन नहीं मिला, पति पत्नीको अथवा पत्नी, पतिको नहीं चाहती, तो मनःस्थिति कैसे ठीक रह सकती है । ऐसी स्थितिमें उन दोनोंका शारीरिक सम्बन्ध भलेही स्थापित हो जाय —सन्तानोत्पत्ति भलेही होती रहे, परन्तु मनःस्थिति ठीक नहीं हो सकती । इसी प्रकार तामसी और नशीली वस्तुओंके सेवनसे भी चित्तकी अनस्थिरता बढ़ जाती है, अनेक दुर्भावोंका उदय होता है और सद्भाव लोप हो जाते हैं । इस स्थितिमें कोई चाहे, कि हम चित्त स्थिर रखें अथवा सुन्दर सन्तान उत्पन्न करें तो यह असम्भव

-दाम्पत्य-विज्ञान-

नहीं तो काट-साध्य अवश्य है। प्लुटार्क नामक एक विद्वान लिखते हैं कि I give this advice given by my predecessors, that no man should unit with his wife for issue except when sober, for those begotten while their parents are drunk more usually prove bibbers and drunkards” अर्थात् मैं वही शिक्षा दे रहा हूँ जो मुझे अपने पूर्वजोंकी ओरसे मिली है, कि किसी पुरुषका चित्त जबतक स्वस्थ किंवा सावधान न हो तबतक उसे सन्तानोत्पत्तिके लिये स्त्री-संग न करना चाहिये। क्योंकि उस समय यदि माता पिता दुर्व्यसनका सेवन करते हैं, मदिरा आदि पीते हैं, तो उनकी सन्तान उनसे बढ़कर दुर्व्यसनी निकलती है।

हम पहले ही कह चुके, कि पिताकी अपेक्षा माताकी मनःस्थितिका गर्भपर अधिक प्रभाव पड़ता है। भग्यी बुर्गी प्रकृति रूप, गुण, बुद्धि, रङ्ग और आकार प्रकार जैसा माताके मनमें बस जाता है, वैसाही बच्चेमें उतर आता है। गर्भपर मनकी बातोंका प्रभाव पड़ते जरा भी देर नहीं लगती। यदि माता अन्धकारमें ही गर्भ धारण करे और दूसरे दिन या गर्भ भूमिष्ट होनेतक पतिको न देखे या स्मरण न करे तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि बालकका रूपरङ्ग और गुण

-दाम्पत्य-विज्ञान-

आदि बातें माताकेही समान होंगी । यदि कोई स्त्री पतिकी अपेक्षा अपनेको अधिक सुन्दर समझती है और अभिमान पूर्वक बारंबार दर्पणमें मुख देखा करती है, तो उसकी सन्तानमें पिताका गुण न आकर माताकाही गुण आता है । उपरोक्त दशामें यदि अपने पतिका भी यत्किञ्चित् ध्यान करती है तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उसके पूर्वोक्त भावोंका प्राबल्य दूसरे भावोंकी अपेक्षा अधिक होता है । जो स्त्रियां अपने रूपके साथ ही पतिके रूप और गुणोंपर भी मुग्ध रहती हैं, उनकी सन्तानमें माता और पिता दोनोंके गुण पाये जाते हैं ।

कभी कभी इस नियमके कारण बड़ी विचित्र घटना भी घटित हो जाती है । घरमें यदि स्त्रीके भाई बन्धु, अड़ोसी पड़ोसी अथवा किसी अन्य पुरुषका आवागमन होता है और उसके रूप तथा गुणोंपर स्त्री मुग्ध होती है, किंवा मुग्ध न होनेपर भी बारंबार उसे देखती है, तो सन्तानका रूपरङ्ग उसी पुरुषके समान हो जाता है । कभी कभी ऐसे पुरुषोंका आना पतिको पसन्द नहीं होता । वह चाहता है, कि फलाना मनुष्य हमारे यहां अधिक आया जाया न करे । परन्तु किसी कारणवश यदि उसका आवागमन बन्द नहीं होता और स्त्री इस बातकी चिन्ता करने लगती है, कि पतिको

-दाम्पत्य-विज्ञान-

इसके और मेरे बीचमें अनुचित सम्बन्ध होनेका सन्देह न हो जाय, तो उस चिन्ता और व्याकुलता एवम् उस पुरुषके दर्शनसे उसके गर्भस्थ बालकका रूपरङ्ग और गुणादि वैसे ही हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें जब बालकका जन्म होता है, तब पिताका सन्देह दृढ़ हो जाता है और उसकी आकृति देख कर बाहरी लोग भी वैसा ही संदेह करने लगते हैं। कभी कभी इसी बातके कारण पति पत्नीमें मनो-मालिन्य हो जाता है अथवा पति स्त्रीको दुराचारिणी समझ, उसे त्याग देता है। इस प्रकार निर्दोष अवलाओंको केवल अपनी मनस्थिति ठीक न रखनेके कारण भयंकर दंड भोग करना पड़ता है। उन्हें इस बातकी खबर ही नहीं होती, कि यह केवल जरा सी भूलका ही परिणाम है। यदि उन्हें इस बातकी शिक्षा दी जाय, यह बातें उन्हें भलीभांति समझा दी जायें, तो वे ऐसा कदापि न करें। स्त्रियोंको चाहिये, कि इन बातोंको ध्यानमें रख, गर्भावस्थामें पर-पुरुषका कदापि ध्यान न करें। स्वपतिमें ही अखण्ड ध्यान और उसीपर प्रेम रखें।

गर्भावस्थामें न केवल किसीका ध्यान करनेसे ही बच्चों पर प्रभाव पड़ता है, बल्कि किसी आकस्मिक कारणसे उत्पन्न होनेवाले भय, चिन्ता, हर्ष और शोकका भी प्रभाव पड़ता

-दाम्पत्य-विज्ञान-

रहते हैं, इस बातका ठीक ठीक पता अबतक कोई नहीं लगा सका । अधिकांश विद्वानोंका मत है, कि यह डिम्ब बहुधा आठ दश दिन तक ही जीवित रहता है । यहां प्राच्य और पाश्चात्य सिद्धान्तोंका एक तरहसे मेल हो जाता है । हम अपने ही शास्त्रोंकी बातको प्राधान्य दे, मान ले सकते हैं, कि स्त्रियां रजोदर्शनके दिनसे सोलह दिन तक ही गर्भ-धारण कर सकती हैं । इसी सोलह दिनके समयको हमने ऋतुकाल कहा है । इसके बाद यदि स्त्रियां गर्भ धारण कर सकती हैं, तो वह केवल अपवाद है, साधारण नियम नहीं ।

ऋतुकाल पर सब लोगोंको समान रूपसे ध्यान देना चाहिये । जो लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये सहवास करें, उन्हें इस बातको समझ लेना चाहिये, कि किस दिन सहवास करनेसे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है और जो लोग आनन्द प्राप्तिके लिये सहवास करें उन्हें यह इसलिये जान लेना चाहिये जिससे गर्भ सञ्चार न हो, और यदि हो तो किसी अच्छे दिन हो, जिससे हीन सन्तान न उत्पन्न हो । ऋतुकालके सम्बन्धमें मनु भगवानने लिखा है कि:—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।

चतुर्नितरैः साद्धर्महोभिः सद्वि गर्हितैः ॥

- दाम्पत्य - विज्ञान -

शुद्ध है, कि स्त्रियोंको गृहिणी या माता होनेके पूर्व ही इन बातोंकी सम्पूर्ण रूपसे शिक्षा दे दी जाय । स्कूलोंमें अध्यापिकाओंका और घरमें माताओंका यह प्रथम कर्तव्य होना चाहिये । यदि कन्याओंको इस बातकी शिक्षा न दी जाय तो वे इन बातोंको कैसे समझ सकती हैं ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि कन्याओंको इन बातोंकी शिक्षा देनेमें माता पिताको संकोच मालूम होगा, परन्तु शिक्षा न देनेसे जो भयंकर परिणाम होता है, भविष्यकी प्रजा जिस प्रकार बिगड़ती है, उसपर ध्यान रखते हुए इस संकोच भावको जलाञ्जलि दे देना ही उचित है ।

हमलोग पशुओंकी नस्ल सुधारनेमें बड़े यत्नवान रहते हैं । एक गाय या भैंसका बच्चा दृष्टपुष्ट और बलिष्ट हो तदर्थ अनेक उपाय करते हैं, पक्षियोंसे अच्छे बच्चोंकी आशा रखते हैं, यहाँतक कि फल फूल और वृक्षों तकको सुधारनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु कितने दुःखकी बात है, कि मनुष्य, जिसका शरीर परमात्माका निवास-स्थान समझा जाता है, संसारके प्राणी मात्रका कल्याण जिस पर अवलम्बित है और सृष्टिका समस्त सञ्चालन भार जिसपर निर्भर करता है, उसके सुधारमें हम उदासीनता प्रदर्शित करते हैं । हम यह चाहते हैं, कि हमारी सन्तान सुन्दर, गुणवान और दृष्ट-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पुष्ट हो, परन्तु तदर्थ कोई चेष्टा नहीं करते । यह कसी विचित्र बात है, कैसा विष्क्रिय व्यापार है !

हमलोग सन्तान सम्बन्धी समस्त वार्तें दैवाधीन समझते हैं । कहा करते हैं कि इसमें हमारा कोई वश नहीं, परन्तु वैज्ञानिकोंने यह बात भली भाँति प्रमाणित कर दी है, कि माता पिता ही बच्चोंके जन्मदाता—उनके रूप गुण और भाग्यके निर्माता हैं । यदि स्त्री और पुरुषोंने अपना कर्त्तव्य न समझा, उन्हें इस बातकी शिक्षा न मिली और भाग्य भरोसे ही सन्तानोत्पत्तिका काम चलता रहा, तो कौन कह सकता है, कि हमारी सन्तान कैसी होगी । हमतो समझते हैं, कि यही हाल रहा तो जिस भारतकी मातायें राम, कृष्ण, ध्रुव और प्रह्लाद जैसे पुत्रोंको जन्म देती थी, उसी भारत की मातायें कुछ ही दिनोंमें राक्षसोंको जन्म देने लगेंगीं । जहां देव उत्पन्न होते थे, वहां दानव उत्पन्न हाने लगेंगे । ऐसी हीन सन्तान उत्पन्न होने लगेगी, जिसके रूप और गुणोंको देख, उन्हें दानव कहनेके लिये हमें बाध्य होना पड़ेगा । उस समय भारतवर्षमें हाहाकार मच जायगा और वात्स्यायन मुनिको इस विषयकी शिक्षा देनेके लिये पुनः अवतार लेना पड़ेगा । परन्तु हम आशावादी हैं । हम वर्त्तमान दशाको देख निराश नहीं होते । केवल इतना ही

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कहते हैं, कि भारत इस विषयमें भा पिछड़ा जा रहा है। साथ ही हम जानते हैं, कि संसार परिवर्तनशील है। जो आज है, वह कल न रहेगा। भारत आज पिछड़ा हुआ है, तो कल सर्वापेक्षा आगे बढ़ा हुआ भी दृष्टिगोचर हो सकता है। ईश्वर करे, भारतका वह सुदिन शीघ्र आवे।

आवश्यकता केवल इस बातकी है कि लोगोंकी रुचि इस विषयकी ओर आकर्षित हो, लोग इन बातोंको भलो-भांति समझे और इनपर विचार करें। माता-पिता अपने बच्चोंको इन बातोंकी शिक्षा दें और दिलावे। विवाहित सज्जनोंको चाहिये, कि अपनी गृहदेवियोंके हाथमें इस विषयकी पुस्तकें दें और यदि वे पढ़ी-लिखी न हों, तो स्वयं उन्हें सुबोध भाषामें यह विषय समझायें और इन बातोंका महत्व बतलायें। यदि वे इस शिक्षाकी उपेक्षा करेंगे, तो निःसन्देह भारतकी भावी प्रजाके भाग्यपर कुठाघात करनेके दोष-भागी होंगे।

स्त्रियोंको आरम्भसे ही सच्चरित्र होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। तदर्थ उन्हें राम, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, ध्रुव, श्रोकृष्ण, प्रह्लाद, सीता, सावित्री, शैव्या आदि चरित्रवान स्त्री पुरुषोंके चरित्र पढ़, उनके उत्तम गुणोंको धारण करना चाहिये। काम, क्रोध, द्वेष, वै, विरोध, क्रूरता, छलकपट,

—दाम्पत्य-विज्ञान—

हिंसा, अनीति और ऐसो ही निन्द्य बातोंसे सर्वदा दूर रहना चाहिये । ऐसे शब्द न कहें, जिससे हृदयपर बुरा प्रभाव पड़े । जहां भय हो, वहां न जायं, वैसी चीजें न देखें— देखनेको इच्छातक न करें । विकारोत्पादक भोजनका त्याग करें । रजोदर्शन और गर्भावस्थाके नियमोंका यथाविधि पालन करें और घरमें सुखोपभोगके उपकरण सुशोभित और स्वच्छ रखें । चित्र केवल वही रक्खे जाघें, जो रूप, रङ्ग गुण और बुद्धिमें श्रेष्ठ व्यक्तियोंके हों, सुन्दर देव-देवियोंके चित्रोंको भी स्थान दिया जा सकता है । वन, उपवन, लता, लतागुल्म और वृक्षादिकके मनोमुग्धकर सुन्दर चित्रोंको विशेषरूपसे स्थान देना चाहिये, क्योंकि उनको देखनेसे चित्त प्रफुल्लित रहता है । यदि स्त्रियाँ बाहर निकलें, तो उन्हें मनचले नवयुवकों या चित्त खराब करनेवालो वस्तुओंकी ओर दृष्टिपात न कर, प्राकृतिक दृश्य देखने चाहिये ।

गर्भधारणके समय तथा गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अपने पतिके ही रूप और गुणपर मुग्ध रहना चाहिये । यदि पतिमें कोई दोष हो तो उसे सवेथा भूल जाना ही श्रेयस्कर है । हां, यदि पतिकी इच्छा हो, कि पुत्र किसी महापुरुष या महात्माके समान हो; तो पतिकी आज्ञा प्रसक्त स्त्रीको उस पुरुष या महात्मामें अनुरक्त रहना अनुचित नहीं, परन्तु यह

—तमस्य-विज्ञान—

कार्य पतिकी सम्मति, इच्छा और आज्ञा के बिना कदापि न होना चाहिये । गर्भाधानके समय ऐसी मनस्थितिका होना परमावश्यक है । इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पति अथवा उन महापुरुषोंके चित्र ऐसे स्थानमें रखना चाहिये, जहां सदैव दृष्टि पड़ती रहे । साय ही मनमें यह इच्छा करते रहना चाहिये, कि मेरे ऐसा ही गुणवान, बुद्धिमान और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो । इस प्रक्रियासे मनवाही सन्तान उत्पन्न को जा सकती है । अपने बालकोंको सुन्दर और भले बनाना यह स्त्रियोंका परम कर्त्तव्य है । इससे सखी सहेलियों तथा जनसमाजमें उनकी प्रतिष्ठा होती है और उस प्रतिष्ठाके कारण स्वयं उनका भी चित्त प्रसन्न रहता है । अतः स्त्रियोंको इन नियमोंके पालनमें सदा दत्तचित्त रहना चाहिये और पुरुषोंको उनके इस काममें सब तरहसे सुविधा कर देनी चाहिये । यदि संसारमें स्वर्गका दृश्य उपस्थित करना हो, अपनी गृहस्थी सोनेकी बनानी हो, तो इस मूलमन्त्रको सदैव स्मरण रखना चाहिये ।





गृहिणी-कर्त्तव्य ।



गत अध्यायोंमें दाम्पत्य-जीवनके सम्बन्धमें हम बहुत कुछ बता चुके हैं और यह दिखा चुके हैं, कि इस गृहस्थीको इन्द्रकी अमरावती अथवा नन्दन-काननमें परिणत कह लेना अपने दाथकी बात है । थोड़ी सावधानता और कुछ नियमोंका पालन करते रहनेसे ही यह गृहस्थी स्वर्गरूपमें परिणत हो जाती है । इसके विपरीत उन नियमों पर ध्यान न देनेसे ही इस गृहस्थीका सौन्दर्य, सुख और जीवन सभी कुछ नष्ट हो जा सकता है ।

परन्तु असल बात यह है, कि गृहस्थी या दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुषको सम्मिलित शक्ति-योजनाका परिणाम है । स्त्री है और पुरुष नहीं, अथवा पुरुष है और स्त्री नहीं, तो न वह गृहस्था ही कहला सकती है, न दाम्पत्य-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

जीवन ही। दोनों सम्मिलित होकर जब अपने कर्त्तव्योंका पालन करते रहते हैं, तभी वह गृहस्थी सुचारु सम्पादित रहती है और तभी मानव जीवन श्रेष्ठताके उस उच्चतर आसनपर आसीन होता है, जिसे स्वर्गीय जीवन या सुखका परमोत्कर्ष कहते हैं। इस स्वर्गीय जीवनका आनन्द लूटनेके लिये स्त्रीपुरुषमें पारस्परिक प्रेमकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ही कुछ कर्त्तव्योंके पालन की प्रेम पैदा करनेके लिये और उसे स्थायी रखनेके लिये भी कुछ ऐसे काम करने पड़ते हैं और कुछ ऐसे नियमोंको पालन करना पड़ना है, जिनसे एक दूसरेका हृदय एक दूसरेकी ओर आकर्षित होता रहता है और तभी समस्त जीवन, आनन्द, सुख और शान्तिमें व्यतीत होता है।

भारतीय शास्त्र-विधानमें स्त्रियोंको एक बहुत ही ऊँचा आसन दिया गया है। उन्हें गृहिणीके उस पदपर बैठाया गया है, जो दाम्पत्य-जीवनकी सर्वोच्च श्रेणी है और जिस आसनपर बैठकर स्त्रियाँ, गृहस्थीको एक ऐसा आनन्द निकेतन बना देती हैं, जिसमें पुरुष अपना समस्त जीवन सुख विमोह अवस्थामें बिता देता है। परन्तु यह वे ही स्त्रियाँ कर सकती हैं, जो अपना कर्त्तव्य समझती

-दाम्पत्य- विज्ञान-

है, पुरुषोंका प्रेमसम्पादन करनेका नियम और कथा जिन्हें ज्ञात है और जिन्हें मालूम हैं, कि बिना अपने अर्द्धाङ्ग को वरामें लाये और प्रसन्न रखे, गृहस्थो, भार स्वरूप हो पड़ती है।

इसो लिये, इस स्थानपर दाम्पत्य जीवनके अर्द्धाङ्ग स्त्रियोंके कुछ कर्तव्य बता देना भी हम जरूरी समझते हैं। काम-शास्त्रके प्रणेता महर्षि वात्स्यायनने अपने काम-सूत्रमें और कोका पण्डितने अपने रति-रहस्यमें इन्हीं कर्त्तव्यों और नियमोंका पालन करनेवाली रमणियोंको सदा सुखी बताया है। उनका तो यह कहना है, कि इन नियमोंको पालन करनेवाली स्त्रियोंको कभी आपसमें मनोमालिन्य रूपी दुःखकी हवा लग ही नहीं सकती है। बात वास्तवमें सत्य भी है और इसीलिये, हमारी तो यहाँतक राय है, कि इन नियमोंको, प्रत्येक स्त्री और बालिकाको कण्ठस्थ करा देना चाहिये और अपने घरमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखकर लगा देना चाहिये, जिसमें दिन-रात इनपर दृष्टि पड़ती रहे और इनका मनन होता रहे।

सबसे पहली बात जो वे कहते हैं, वह यह है, कि—
युवतिरपि विहाय प्रातिकूल्यं स्वनाथं,

वचनहृदयकायः पूजयेदिष्टदेवम्।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

गृहवसतिमथासौ चिन्तयेद्भर्तृवाचा,

प्रतिदिनमतिभृष्टं वेश्म कुर्यात्सुशोभम् ॥

हम ऊपर कह चुके हैं, कि पति पत्नी दोनोंको हो यह है, कि वे ऐसे काम किया करें, जिससे एकका हृदय दूसरेकी ओर आकर्षित होता रहे और दोनों ही जीवन भर प्रेम-सूत्रमें बँधे हुए अपना समय बिता सकें। इसके लिये सबसे जरूरी बात है, प्रतिकूल भावका त्याग। इसी लिये इस श्लोकमें कहा गया है, कि युवतियोंको ऐसा कोई भी भाव न दिखाना चाहिये और कोई भी काम न करना चाहिये, जिससे उनके पतिके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हो जाये, कि यह मेरे विपरीत चल रही है। यह काम तबतक नहीं हो सकता, जबतक मन बचन और शरीरसे वह अपने पति देवताको पूजा इस ढङ्गसे न करती हो, जिस ढङ्गसे कोई अपने इष्ट देवताका पूजन करता है।

कुछ लोगोंका कहना है, कि शास्त्रकार पुरुष थे। ग्रन्थ-रचयिता पुरुष थे, इसलिये अपनी पद-मर्यादाको बढाये रखने और अपने अधिकारका विशेष उपयोग करनेके विचारसे स्त्रोसे पतिका दर्जा ऊँचा रखा है और स्त्रियोंको दासी रूपमें परिणत कर उनसे सब प्रकारका स्वार्थ-साधन करनेके लिये ही ऐसी बातें कहीं हैं और

-दाम्पत्य-विज्ञान-

इसलिये उन्हें देवता बना दिया है और गृह-राज्यमें उनके पदको विशेष माना है। परन्तु हमारा कथन यह है, कि उन्होंने ये बातें सत्य बतायीं हैं और इस कारणसे बतायीं हैं, कि पुरुषपर केवल गृहस्थीके संभालनेका भार ही नहीं रहता वरन अर्थागमका उपाय करते हुए गृहस्थीकी ओर भी कुछ न कुछ ध्यान देना पड़ता है। अर्थ न रहनेसे गृहस्थीमें कितने ही अनर्थ पैदा हो जाते हैं और कलह, विद्वेष, मनोमालिन्य प्रेमका अभाव और दरिद्रता भी पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्थामें, पुरुषपर स्त्रीका प्रेम और रुचि-सम्पादन गृहस्थीके कुछ कार्योंका अवलोकन और इसके साथ ही धनागमके लिये उद्योग और परिश्रम करनेका भी भार लदा रहता है। अतएव, पुरुषोंके कर्त्तव्यकी मात्रा कुछ विशेष ही चढ़ी बढ़ी रहती है। ऐसी अवस्थामें यदि उसे अपनी अर्थाङ्गिनीकी ओरसे मनमें किसी प्रकारका खटका, कुछ भय अथवा संशय बना रहता है, तो इनपर कहे हुए कामोंका भली-भांति सम्पादन नहीं कर पाता, उसका मन चञ्चल और हृदय उत्साह-हीन बना रहता है। यहीं तो प्रेमका पूर्ण विकास दिखाई देता है, जो जिसे जितना ही प्यार करता है। उसके हृदयमें उसके इष्ट-अनिष्टकी उतनी ही चिन्ता, उतना ही

-दाम्पत्य- विज्ञान-

संशय और उतना ही भय बना रहता है। गृहराज्यके स्वामीका यहो कर्त्तव्य भी होना चाहिये। लेकिन जब वह यह देखता है, कि हमारी हृदय-देवी, जिसे हमने अपना तन-मन और जो कुछ उगार्जन कर लाते हैं, वह धन भी सौंप दिया है—वह दिन रात मेरी ही तरह मनः वचन और शरीरसे मेरी ही उपासनामें लगी है, मेरी बातोंका ध्यान किया करती है, मुझे देवताकी तरह मानती है, घरमें बैठी रहने पर भी मेरी कही हुई बातोंकी, मेरी ही स्थितिकी चिन्ता किया करती है, उस समय उसका हृदय प्रेमसे अधीर हो जाता है, आनन्दसे पुलकित हो जाता है और वह अपनी पत्नीको स्वर्गको देवी समझने लगता है। इसीका यह परिणाम होता है, कि उसका प्रेम दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता जाता है और गृहस्थी प्रेम-राज्यमें परिणत हो जाती है। इतना करने—अर्थात् मन वचन और शरीरसे पतिका प्रतिकूल भाव त्याग देनेके साथ ही साथ हमेशा घरको सफाई पर ध्यान रखना घरको गोबर इत्यादिसे लीप-पोतकर साफ रखना भी स्त्रियोंका एक कर्त्तव्य कर्म है।

इसमें सन्देह नहीं कि सफाई गृहस्थीमें पैदा होनेवाले बहुतसे रोगोंको नाश करनेका एक उपाय, स्वास्थ्य और

-दाम्पत्य-विज्ञान-

सौन्दर्य उत्पन्न करनेको सामग्री और मनमें स्फूर्ति लाने-वाला एक साधन है। जिस गृहस्थीमें सफाईपर ध्यान नहीं है, जहाँ गन्दगीका अखाड़ा है, जहाँ कूड़ा-कंकट, लड़कोंकी विष्टा इत्यादि गन्दगी पैदा करनेवाली सामग्रियां पड़ी रहती हैं, उस घरमें जिस तरह रोग अपना अधिकार फैलाता है, उसी तरह दरिद्रता भी अपना जाल बिछा देती है और सबसे बड़ी खराबी तो यह पैदा हो जाती है, कि यह गन्दगी पति पत्नीके प्रेममें बाधा पैदा करनेवाली बन जाती है। क्योंकि जब पति दिनभरका थका-पका परिश्रमसे चूर, घरमें आकर चारों ओर गन्दगी देखता है, तो उसी समय उसके हृदयमें यह बात उठता है, कि जिसे हमने गृहराज्यकी स्वामिनी बना रखा है, वह फूहड़ है, उसमें सौन्दर्यको पैदा करनेवाली सफाई नहीं है, उसमें गृह-राज्यमें संचालनकी क्षमता नहीं है। बस, इसी इसी स्थानसे विकारका प्रवेश होता है, भेदका बीज बोया जाता है और फूट रही आगकी एक चिनगारी आ पड़ना है। कौन कह सकता है, कि यही चिनगारी आगे चलकर दोनों हृदयोंको दग्ध करनेवाला एक भयंकर दावानल न बन जायगा ?

परन्तु इतनेसे ही स्त्रीकर्तव्यकी परिसमाप्ति नहीं हो

-दाम्पत्य- विज्ञान-

जाती है। स्त्रियोंको इस बातका खयाल रखना भी बहुत जरूरी है, कि पतिके वन्धुवर्ग और जो अनुचरवर्ग हैं, अथवा पतिके जो सगे सम्बन्धी हैं, उनका उसके द्वारा कोई अपमान, तिरस्कार अथवा उपहास न होने पाये, इतना ही नहीं, पण्डित कोकराज तो गुरु सखि, भृत्य प्रभृति सभीके प्रति स्त्रीकर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं:—

गुरुषु सखिषु भृत्ये वन्धुवर्गं च भर्तु-

व्यपगतमदमाया वर्तयेत् स्वं यथार्हम् ।

सितपरिमितवेषं केलिवीहारहेतोः

प्रचुरमरणमद्भुः प्रेयसो रञ्जनाय ॥

अर्थात् अपनेसे जो बड़े हैं, ससुर, सास, अवस्थामें बड़ी स्त्रियां, तथा पतिसे जिनका सम्बन्ध हो, ऐसे परिचित वन्धुवर्ग इत्यादिके सामने अहंकारको त्याग दे, जिसमें उनके मनमें किसी प्रकारका कष्ट अथवा ईर्ष्या या स्त्रीकी शिकायत पतिसे करनेका और मनमें फर्क डाल देनेका मौका न मिले। इसके अलावा पतिके उपार्जन किये हुए अर्थमेंसे भी उनका यथोचित अंश उनको प्रदान करे। इन बातोंसे वह स्त्री सबकी आदरिणी बनी रहती है कभी किसीको पतिसे उसकी निन्दा करने या शिकायत कर मन फेर देनेका अवसर नहीं मिलता,

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बल्कि होता थह है, कि सभी उसकी प्रशंसा किया करते हैं और अपनी हृदयेश्वरीकी प्रशंसा सुनकर पतिका हृदय भी सदैव उसकी ओर आकर्षित होता रहता है। इससे किसी तरहका मनोमालिन्य पैदा होनेकी सम्भावना दूर हो जाती है। परन्तु यह समस्त संसार सौन्दर्यका उपासक है। स्त्रियोंका आदर तो उस समय और भी बढ़ जाता है, जिस समय इन गुण गरिमाओके साथ उनमें सौन्दर्य-गरिमाकी मात्रा भी परिपूर्ण रहती है। यद्यपि भगवानका दिया हुआ सौन्दर्य तथा आकर्षण स्त्रियोंमें मौजूद रहता है, तथापि इसलिये समय समयपर अपनेको विविध आभूषणोंसे विभूषित रखना आवश्यक हो जाता है, कि एक ही प्रकारकी चोजको एक ही ढंगसे सदैव देखते रहने पर मनुष्यकी स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी होती है, कि उसकी ओरसे जी भर जाता है। इसके अलावा प्रत्येक समयके लिये और प्रत्येक कार्यके लिये एक एक साधनकी आवश्यकता रहती है। पुरुषोंका मन सदा अपनी ओर प्रलुब्ध रखनेके लिये स्त्रियोंका इन साधनोंको हमेशा काममें लाते रहना बहुत ही जरूरी है। इसलिये पण्डितराज कोका लिखते हैं कि केलि-विहारके समयके लिये उज्ज्वल वेशमें स्त्रियोंको अपनेको सजा रखना चाहिये। अपने प्रिय

-दाम्पत्य- विज्ञान-

पतिका मनोरंजन करनेके लिये दिव्य वस्त्र आभूषणोंके साथ ही साथ उत्तमोत्तम सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंको भी धारण करना चाहिये, जिसमें वे बहुत ही मनोमोहक और प्रीतिपद दिखाई दें । इतना ही नहीं स्थान हो तो पुष्प और मनोहर वृक्षोंकी वाटिका अपने घरके सामने लगा रखनी चाहिये, जिसमें—

मरुवक, नवमाली, मालती, कुन्द, मल्ली,

तरुण सदृश पुष्पा वीर्यः सौरभाढ्या ।

सुमधुर फल वृक्षा मूलकालाबुभाण्ड,

प्रभृतिविटपिकादीनर्पयेद्वाटिकायाम् ॥

कोमल कोमल बेला जुही मालती, कुन्द, चमेली प्रभृति खिले हुए फूल लगे हों, जिनकी सुगन्धसे वह निवास स्थान सुगन्धित और कुसुम-शोभासे सुशोभित होता रहे । इसके अलावा मधुर फल देनेवाले वृक्षोंको भी उस वाटिकामें स्थान देना चाहिये । कुछ कोहड़े तथा ऋतुकालमें उत्पन्न होनेवाली शाक सब्जीको भी लगाना चाहिये ।

पहले श्लोकमें यथासमय पुष्पमालाओंका धारण आवश्यक बताते हैं, इसके बाद ही कहते हैं, कि घरके सामने एक पुष्प वाटिका भी रहनी चाहिये । इन बातोंके कहनेका तात्पर्य स्पष्ट है अर्थात् पत्नीको सदा इस बातका

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ध्यान रखना पड़ता है, कि पतिके धनका दुरुपयोग न हो । नित्य व्यवहारके लिये फूलोंकी आवश्यकता है, फलोंकी जरूरत है, शाक-सब्जीका प्रयोजन भी बना ही रहता है । इनतीनोंके बिना काम नहीं चलता । यदि ये चीजें घरमें मौजूद नहीं हैं, पैदा नहीं होती हैं, तो अर्थ-व्यय व समय नष्ट कर लाना पड़ता है । अर्थ-व्यय करनेपर भी अनेकवार मन पसन्द चीज नहीं मिलती और कभी कभी तो उस चीजके लिये दूना चौगुना मूल्य देना पड़ता है । सुघड़ गृहिणी अपने पतिके अर्थको यों खर्च नहीं होने देना चाहती, वह चाहती है, कि एक पंथ दो काज हों । इसीलिये घरके सामने सुरम्य सुहावनी वाटिका सजाकर उसमें मनोहर पुष्प लगा देती हैं, सुन्दर फल वृक्षोंकी आयोजना करती हैं और साग-सब्जोंके लतामण्डपको नयनाभिराम बनानेके साथ ही साथ अपने गृह-कार्यको भी सर्वाङ्गपूर्ण बना लेता है । पण्डितराज कोका ऐसी ही गृहिणी चाहते हैं, जिससे पतिका अर्थ और समयका सदुपयोग भी हो और किसी चीजका अभाव भी न दिखाई दे । ये तो हुईं पतिके मनोरञ्जन और गृह-संचालन-चातुर्यका बातें, पर अभी कितनी ही बातें ऐसी और भी हैं जो पतिके हृदयमें पत्नीकी ओरसे नाना प्रकारके संशय उत्पन्न

[२५७]

-दाम्पत्य-विज्ञान-

करती हैं और जिनसे पति-पत्नीका जीवन क्लेशमय हो जाता है ।

स्त्रियोंको सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि वे अपनेको ऐसी संगतिसे बचाती रहें, जिससे उनके हृदयमें किसी प्रकारका मनोविकार उत्पन्न हो, जिसकी वजहसे अपने पति-देवके प्रति उनके मनमें किसी प्रकारका विराग उत्पन्न हो सकता हो अथवा किसी प्रलोभनमें पड़कर उनका जीवन शोक, दुःख और विडम्बनामय हो जा सकता हो । नीचे जिन स्त्रियोंका नाम दिया जाता है, उनकी संगतिसे ऐसे ही विपत्तिके बादल उनके गृह-राज्य-पर छा सकते हैं, अतएव इनको संगतिसे हमेशा बचते रहना चाहिये ।

सकृदपि कुलटाभिर्योगिनी भिक्षुकामि-

नटविट घटिताभिः संसृजेन्मौलिकामिः ॥

रुचिरमिदममुष्मै पथ्यमेतन्नवेति

प्रतिदिनमपि भर्तुर्भोजनेच्छां विदध्यात् ॥ ४ ॥

बात यह है, कि नट इत्यादिके साथ जो स्त्रियाँ रहती हैं, उनका चरित्र अच्छा नहीं रहता है, वे अधिकांश कुलटा रहती हैं, इनके अलावा इधर उधर दिनभर घूमनेवाली औरतोंका भी चरित्र अच्छा नहीं होता, भीख मांगनेवाली,

-दाम्पत्य-विज्ञान-

तथा जिन स्त्रियोंने अपना चरित्र नष्ट कर दिया है, वे घर घरमें घुसकर कुल-ललनाओंको भी अपनी संगिनी बनाती है और पीछे उन्हें विपत्ति-सागरमें ढकेल देती हैं। आज-कल तो ऐसी स्त्रियोंका दल बहुत ही जोर पकड़े हुए है। ऐसी कितनी ही कूलटाएँ हैं जो कपड़े बेचनेवालीका रूप बनाकर, नाकका कांटा आदि स्त्रियोंके शृंगारकी सामग्री लेकर अथवा गाना सुनाने और भिक्षा मांगनेके बहाने कुल-ललनाओंके पास जाकर बैठती हैं। उन्हें धीरे धीरे उनके पतिका दुर्गुण बताकर, पतिकी ओरसे उनके मनमें विराग उत्पन्न करती हैं। सदा उनके हृदयमें इस बातका प्रलोभन पैदा करती रहती हैं, कि अमुक स्थानमें अमुक दर्शनीय पदार्थ है, अमुक खेल तमाशा हो रहा है, अमुक स्थानमें मेला और देव-दर्शन महोत्सव है, ऐसी वहकाने वाली कितनी ही बातें बताकर उनको अपने साथ ले जाती हैं और किसी न किसी तरह उनका चरित्रबल और सतीत्व नष्ट करा देती हैं। इस तरह उन कुल-ललनाओंका ऐसा अधःपतन होता है, कि वे फिर उस श्रोवीके गद्देकी जैसी हो जाती हैं, जो न घरका रहता है न घाटका। ऐसी स्त्रियोंसे कुल-ललनाओंको अपनेको हमेशा बचाते रहना चाहिये। उन्हें कभी घरमें न घुसने देना चाहिये।

-दम्पत्य-विज्ञान-

और न उनके क्षीये हुए असार प्रलोभन और बनावटी सज्ज-बागपर ही कभी ध्यान देना चाहिये । हमारे कथनका तात्पर्य यह है, कि इन स्त्रियोंके घरमें घुसनेपर कुल-वधुओंपर जो आपदा आ सकती है, वह तो आती ही है, साथ ही पति-पत्नीमें मनोभेद पैदा करनेवाला भी एक असाधारण विषय पैदा हो जाता है । अर्थात् ऐसी स्त्रियोंकी संगतिमें अपनी प्राणप्यारीको देखकर पतिको भी उसके आचरणपर सन्देह होने लगता है, उसके मनमें अपनी स्त्रीकी ओरसे विराम उत्पन्न होने लगता है और फिर तो क्रमशः यह अवस्था आ जाती है, कि गृहस्थी सुख-राज्यके बदले कलह-राज्यमें परिणत हो जाती है ।

यही वजह है, कि जो स्त्रियां सदा अपने पतिकी कण्ठ-हार बनी रहना चाहती हैं, वे सदा इस बात पर लक्ष्य रखती हैं, कि ऐसी कुलटाओंकी हवा भी न लगने पाये, जिनसे घरमें फूट, कलह और वैमनस्य पैदा हो । बल्कि उन्हें जो समय बचता है, उसे वे अच्छे उपयोगमें लगाती हैं, पतिकी रुचिके अनुसार, उसकी तृप्ति करनेवाले, नाना प्रकारके बलवर्द्धक, स्वास्थ्य सुधारक भोजन बनाती हैं और अपने सामने बैठकर बड़े प्रेमसे उसे खिलाती हैं । हमारी [प्यारी] पाटिकाओंको सदा स्मरण रखना चाहिये,

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कि पतिके पान आहार और स्वास्थ्य पर ध्यान रखना भी उनका एक आवश्यक कर्त्तव्य है ; क्योंकि वे अपना हृदयहार, हृदयेश्वर समझती हैं, जिनका वे इष्टदेवके समान पूजन करती हैं, जिनके भरोसे पर यह समूचा गृह-राज्य स्थापित है, वे ही जब स्वस्थ, बल सम्पन्न और हृष्ट-पुष्ट न रहेंगे, तब संसारका कोई भी सुख न रह जायगा । शरीरको सुदृढ़ और स्वास्थ्यको चिरस्थायी रखनेके लिये रुचिके अनुकूल समय पर भोजन बहुत ही आवश्यक है । भोजन भी वही उत्तम बना सकता है, जिसके हृदयमें खिलानेवालेके प्रति प्रेम है । दूसरेको क्या पड़ी है, जो उसकी रुचिकी ओर ध्यान रखेगा ? अतएव जो अपने स्वामीका सौन्दर्य, बल और स्वास्थ्य अचल, अटूट और सुन्दर रखना चाहती हों, उन्हें रन्धन-शालाको अपने ही अधिकारमें रखना चाहिये ।

यहींसे स्त्री-कर्त्तव्यका अन्त नहीं होता । उन्हें इस ओर सदैव लक्ष्य रखना पड़ता है, कि पतिका प्रेम पानीके बुलबुले जैसा न हो जाये, जो अभी उठा और अभी टूट फूट कर चकना चूर हो गया । अतएव, उन्हें अपनेको पतिकी पूरी पूरी अनुगामिनी दिखाना पड़ता है । इसीलिये—

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वचनमपि जिशम्यागच्छतो वेश्ममध्ये,
तदुपकरणसज्जा संवसेदागतस्य ।
चरणशृङ्गलमस्य क्षालयेदात्मनाऽसौ,
रहसि च परिबोध्यो वित्तनाशे प्रसक्तः ॥

पतिका वचन सुनते ही पतिको आया हुआ जान कर तुरन्त उसके पास पहुंच जाना भी उनका काम है । इससे पतिके हृदयमें उनके प्रति अनुराग होता है, वह समझता है, कि यह मुझै देखनेके लिये, मेरा साथ देनेके लिये, मेरी सेवा करनेके लिये हमेशा तैयार है । मेरे बिना इसे कल नहीं पड़ती । यही वजह है, कि मेरा स्वर सुनते ही मेरे पास दौड़ती चली आती है । क्या कोई यह कह सकता है, कि यह देखकर पतिके मनमें अपनी पत्नीके प्रति अनिर्वचनीय प्रेमानुराग न उत्पन्न होता होगा ? क्या कोई कह सकता है, कि पत्नीका यह काम देखकर पतिके हृदयका प्रेम-कपाट न खुल जाता होगा अथवा क्या कोई बता सकता है, कि पति-पत्नीके प्रेम-बन्धनको दृढ़ करनेका यह एक और भी मजबूत स्वर्ण-बन्धन नहीं है ? महर्षि वात्स्यायन और कोका पण्डित इस विषयके पूर्ण जानकार और पूरे पण्डित थे, इसीलिये, उन्होंने अपने अनुभवसे ये तरकीबें बतायी हैं, जिससे पति-पत्नीका प्रेम अविचल,

-दाम्पत्य- विज्ञान-

अनुराग उत्तरोत्तर प्रबल और नेह नित नया भाव धारण करता रहे। किसीके हृदय पर विजय प्राप्त करनेके लिये सेवा-भावसे बढ़कर कोई दूसरा भाव नहीं है। इसीलिये यह भी आवश्यक है, कि स्त्रियाँ पतिके आनेके समय, उनकी सेवाके लिये उपयोगी साज सामान हमेशा तैयार रखें और आनेके साथ ही पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये उन्हें काममें लायें, अपने हाथों उनके पैर धोयें और मीठे वचन बोल कर उनका मन परितुष्ट करती रहें।

मेरी प्यारी बहिनोंको यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि पतिका प्रेम-सम्पादन करना ही उनका सबसे प्रधान धर्म, उनके मनको सन्तुष्ट रखना ही उनका आवश्यक कर्त्तव्य और पतिकी प्रीतिका वर्द्धन करते रहना ही उनके जीवनको सुखी बनानेकी सामग्री है; परन्तु जब दो जनोंको एक साथ रहना है और गृहस्थीके सभी कार्योंको चलाना है, तो ऐसा अवसर भी आ सकता है, कि कोई अप्रिय बात—कोई ऐसी बात अपने पतिसे कहनी पड़े, जो उसकी रुचिके अनुकूल न हो। इन विषयोंमें, सबसे अप्रिय-विषय धन-नाश, अधिक खर्च या ऐसा खर्च होता है, जिसकी आवश्यकता नहीं रहती। यदि ऐसा मौका

-दाम्पत्य-विज्ञान-

आ जाये, कि अपने पतिको इन बातोंके समझानेकी बहुत ही जरूरत हो, तो रंडी ही मिष्ट भाषामें हँसकर, एकान्तमें इस ढंगसे उससे कहना चाहिये, कि उसे बुरा न मालूम हो और वह इस विषयको भी समझ जाये ।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि सेवा-भाव ही पतिको वशीभूत करनेका सबसे बढ़िया उपाय है । अतएव, पतिकी आज्ञानुवर्त्तिनी रहना, उसकी आज्ञा लेकर ही सब कार्योंको करना और बिना उसकी अनुमति प्राप्त किये, किसी ऐसे कार्यमें हाथ डालना पत्नीका कर्त्तव्य नहीं है, जो पतिके मनमें किसी प्रकारका संशय उत्पन्न करे । इस कारणसे—

अनुमतिमुपलभ्याधिष्ठितान्यत्र याया—

छ्यनमनुविदध्याद्भर्तृस्तथानमग्रे ।

शयिनमपि न मुञ्चेन्नास्य मन्त्रं विभिन्द्याद्

व्रत नियम विधानं स्वेन चारयानुगच्छेत् ॥

अर्थात् विवाह, यज्ञ, देव दर्शन, गंगा-स्नान इत्यादि कार्योंको यदि पतिसे अलग होकर करनेकी आवश्यकता पड़े तो उसकी अनुमति लिये बिना न करना चाहिये । बिना पतिकी आज्ञा प्राप्त किये ऐसे कामोंको करनेसे पतिके मनमें कष्ट होता है । स्त्रीके प्रांत संशय उत्पन्न

-दाम्पत्य-विज्ञान-

होता है और कभी इसका यहाँ तक परिणाम हो जाता है, कि अपनी हृदयदेवीको हमेशा विना आज्ञाके इधर उधर जाने या घूमते फिरते देखकर पति उसे दुराचारिणी समझने लगता है। इससे क्या नतीजा हो सकता है, यह सभी समझदार स्त्रियाँ जिन्हें अपने जीवनको सुखी रखना है, भली भाँति समझ सकती हैं। यदि कभी ऐसा मौका आ जाये, कि इन स्थानोंमें—घरके बाहर जानेकी जरूरत पड़े तो पतिकी आज्ञा प्राप्त कर लेनेपर भी कभी अकेली न जाये, बल्कि घरकी बड़ी बूढ़ी अथवा पतिकी बहन इत्यादिके साथ ही घरसे 'बाहर' पैर निकाले। सारांश यह कि पत्नी सदा इस बात पर खयाल रखे, कि अकेली घरसे न निकले और न ऐसा काम करे, जिससे पतिके हृदयमें उसके चरित्रके प्रति सन्देह पैदा हो जाये। इसके अलावा भर्त्ताके सो जाने बाद सोये और जागनेके पहले ही शय्या त्याग दे, जिसमें उसकी सेवा और इच्छा-पूर्तिमें कोई अड़चन न पदा हो। सोये हुए पतिको न जगावे और न उसकी कही हुई बात कभी किसीके आगे प्रकाशित करे। कभी कभी इन बातोंको अन्यत्र प्रकट करनेसे भी बड़ा कुफल पैदा हो जाता है और गृहस्थीमें कलह पैदा हो जाती है। यदि पत्नीको कोई व्रत नियम

-तामस्य-विज्ञान-

उपवास आदि करना हो, तो यह भा पतिकी आज्ञा लेकर करे। असल बात तो यह है, कि स्त्रियोंके लिये पति-पूजन ही उनकी सबसे बड़ी पूजा, पति-सेवा ही उनका सबसे प्रधान व्रत और पति-आज्ञा-पालन ही उनका सर्वश्रेष्ठ दान-यज्ञ है। इतने पर भी दैवोद्देश्यसे यदि उन्हें कुछ करना ही पड़े, तो उसे पतिकी इच्छा और अनुमतिके अनुसार ही करे, जिसमें उसके मनमें कोई दूसरा विराग-जनक भाव न पैदा हो जाये।

हम यह भी बता आये हैं, कि स्त्रियोंको सदा इस बातपर ध्यान रखना चाहिये, कि पतिके मनमें संशय उत्पन्न करनेवाले सब कामोंसे उनको बचते रहना चाहिये ये कार्य क्या है, इनका कुछ आभास ऊपर दिया जा चुका है। अब उसी बातको और भी खुलासा करके बताते हैं। पहला काम तो यह बता चुके हैं, कि पतिकी आज्ञा लिये बिना और अकेली कहीं न जाये अब अन्य बातें ये हैं:—

क्वचिदपि निभृते वा द्वारि वा नैव तिष्ठे—

श्चिरमथ गिरमस्मिन् विप्रियां न प्रयच्छेत् ।

न विरलजनदेशे मन्त्रयेन्निष्कुटे वा

न पुरुषमथ पश्येन्मन्त्र हेतुं विना च ॥ ७ ॥

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कहीं भी एकान्तमें किसी दरवाज या झरोखेमें न खड़ी रहे या बैठे, कभी अप्रिय बात पतिसे न करे, एकान्त स्थानमें बैठकर किसी अन्य पुरुषसे किसी विषयपर सलाह न करे, बिना ऐसी ही जरूरत पड़े और पतिसे बिना पूछे दूसरे पुरुषको देखे भी नहीं। ये ही वे कार्य हैं, जिनको बचा लेनेसे पतिके मनमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता और स्त्री पुरुषका प्रेम शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति दिनोदिन बढ़ता चला जाता है।

सुघटित बहु भाण्डं काष्ठमृच्चर्मलोहैः

समयमभि समीक्ष्य प्राददीतात्प मूल्यान् ।

निभृतमसुलभानि स्थापयेद्दे पजानि

व्ययमवहितचित्ता चिन्तितायं च कुर्यात् ॥ ८ ॥

पतिका मन अपनी ओर सदा प्रलुब्ध रखनेके लिये स्त्रियों-को इन ऊपर कही हुई बातोंका भली भांति पालन करनेके साथही साथ अपने गृह-राज्यका संरक्षण और उसे दर्शनीय बनाना भी बहुत आवश्यक है। सदा इस ओर लक्ष्य देना भी आवश्यक है, कि घरमें सुन्दर उपयोगी पदार्थ हमेशा मौजूद रहें। गृहस्थीकी सजावट और सिलसिलेको ठीक रखनेवाली स्त्री ही वास्तवमें गृह-राज्यकी स्वामिनी, पतिकी ठीक ठोक अर्द्धाङ्गिनी और सुचतुरा कही जा सकती है। इसीलिये

-दास्य-विज्ञान-

वात्स्यायन ऋषि कहते हैं, कि समय समयपर सस्ती दरमें मिल जानेवाले काष्ठ, मिट्टी या अन्य पदार्थोंके वर्तन जिनमें मसाले वगैरह भरकर खूबसूरतीसे रखे जा सकते हों, स्त्रीको खरीदकर अपने घरमें सजा रखने चाहियें, जिसमें ऐसा न होने पावे कि आवश्यकता होनेपर ये चीजें घरमें न रहें अथवा इधर उधर बिखड़ी पड़ी रहे। वे तो यहांतक बताते हैं, कि केवल भोजन-सामग्री ही नहीं, बल्कि हमेशा काममें आनेवाली औपधियाँ भी स्त्रियोंको घरमें संग्रह कर रखनी चाहियें। न जाने किस समय कैसा मौका आ पड़े और अवसरपर ये पदार्थ—ये औपधियाँ न प्राप्त हो सकें तो एक बहुत बड़ी हानि हो सकती है। वे कहते हैं, कि बच्च, हड, हीङ्ग, मिर्च, अजमोदा, प्रभृति पदार्थ हमेशा घरमें मौजूद रहने चाहियें।

महर्षि वात्स्यायन बड़े ही दूरदर्शी थे, वे समझते थे, कि गृह-राज्य एक ऐसी जगह है जहां सभी प्रकारके अवसर आया करते हैं, जहाँ भोगके साथ रोग भी बना रहता है, इसलिये इन सुलभ पदार्थोंको हमेशा घरमें रखनेकी उन्होंने सलाह दी है। इतना ही नहीं, वे यह भी कहते हैं, कि स्त्री हमेशा आमदनी और खर्चकी चिन्ता भी रखे, जिससे घरमें अर्थ-संकट न उर्पस्थित हो।

- दाम्पत्य - विज्ञान -

तृणतुपक्कणकाष्ठांगार भस्मोपयोग

परिजन विनियोगं कर्मणः प्रत्यवेशाम् ।

प्रियतमपरिभुक्त्यक्तवस्त्रादिग्क्षां

शुचिभिरवसरे तैर्माननं भृत्यवर्गे ॥ ८ ॥

गृहस्थोको उपयोगी और आदर्श बनानेके लिये घरमें सभी चीजोंकी जरूरत रहती है । जिस तरह खाने पीनेके सामानोंकी जरूरत है, उसी तरह औपधियोंकी भी आवश्यकता है और उसी प्रकारसे इनके खर्च पर ध्यान रखनेका भी प्रयोजन है । अतएव, गृहस्थोमें कितनी ही चीज ऐसी होती है, जो किसी समय तो फिजूल समझकर फेंक दी जाती है, पर जब जरूरत आ पड़ती है, तब उनके अभावकी वजहसे कष्ट सहन करना पड़ता है, वे उन्हें भी आवश्यकताके लिये संग्रह कर रखती हैं और समय पड़ते ही उन्हें निकालकर काम भी चला लेती है । उनकी इस कर्तव्यशीलताको देखकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो उन्हें अपने हृदयके सर्वोच्च आसनपर स्थान न दे ?

इसी वजहसे वात्स्यायनका मत है, कि तृण, धानकी भूसी, छोटे छोटे चावलके कण, लकड़ीके छोटे छोटे टुकड़े, कोयला या राख इत्यादि भी घरमें हमेशा तैयार रखना

- दाम्पत्य - विज्ञान -

चाहिये । :समयपर इनसे बहुत काम निकलता है और तुरन्त धन-व्ययकर :इन पदार्थोंको मंगानेकी जरूरत नहीं पड़ती ।

बेकार समझी जानेवाली इन चीजोंको संग्रह कर रखनेके साथ ही साथ घरमें जो और और स्त्रियां हों उन्हें कायदेसे, नम्रतासे काम बांट देना और उनसे यथोचित कार्य लेना भी मालकिनका प्रधान कर्त्तव्य है । घरकी सभी स्त्रियां यदि मनोयोग पूर्वक कार्य करती हैं, तो उस घरकी श्री और सम्पदा बहुत कुछ बढ़ जाती है । अतएव, परिजनोंसे मीठे वचनों द्वारा उन्हें आप्यायित कर, उनसे काम लेते रहना भी गृहिणी-कर्त्तव्योंमें परिगणित है । इसके साथ ही उनसे परामर्श लेना और अवसर आनेपर उन्हें समझाना बुझाना भी सुदक्ष गृहिणीका ही काम है । पति भोजन करने बैठा हो, यह थालीमें परोसी हुई सब चीजें न खा सका हो, तो उसे भी हिफाजतसे उठा रखना और समयपर अपने काममें लाना बुरा नहीं है । इस स्थानपर इस बातसे यह भी बता दिया है, कि पतिका उच्छिष्ट भोजन करनेमें पत्नी दोष-भागिनी नहीं होती । इसके अलावा पतिने जो कपड़े उतार दिये हों, जिन्हें अब वह न पहनता हो, उन्हें भी उठाकर सावधानीसे रख देना चाहिये

-दाम्पत्य- विज्ञान-

और दास-दासियोंको जरूरतपर देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये ।

परिजनपरिरक्षां वाहचिन्तां पशूनां

कपिपिकशुकशारीसारसादेरवेक्षाम् ।

गुरुषु परवशत्वं तेषु वाचंयमत्वं ।

स्फुटहसितनिवृत्तिं शील वृत्तिं च कुर्यात् ॥६॥

अर्थात् गृहिणीको अपने परिवारवालोंकी रक्षापर भी हमेशा ध्यान रखना चाहिये । वह गृह-राज्यकी रानी ही यदि उनकी हिताकाँक्षिणी न होगी तो दूसरा कौन होगा ? अतएव, उसकी दृष्टि सब ओर रहनी चाहिये । घरमें अगर पतिको शोक हो, और खूबसूरत मधुर भाषी पक्षी रहें, तो पत्नीको चाहिये, कि पतिके लाये हुए उन गृह-पालित तोता, मैना, कोयल, सारस वगैरह पक्षी तथा गाय-भैंस बानर इत्यादि पालित पशुओंकी देख-रेख, उनकी परिचर्या और उनकी रक्षाका ध्यान रखे, जिसमें ये नष्ट न हो जायें और इनको क्लेश होने अथवा इनके नष्ट हो जानेके कारण पतिके मनमें कष्ट और ताप न उत्पन्न हो जाये । यदि पतिसे कोई बड़े घरमें हों तो बड़े नियमके साथ उनसे सम्भाषण करना चाहिये और उतना ही बोलना चाहिये, जितना बहुत ही जरूरी हो । उनके सामने

-दाम्पत्य- विज्ञान-

हंसना न चाहिये और सदा अत्यन्त नम्र व्यवहार करना चाहिये ।

प्रणय सहचरीभिस्तुल्य रूपां सपत्नीं

निजमिव तदपत्यं दर्शयेदप्रमत्ता ।

गनवति दयिते तु क्वापि मांगल्यमात्रा—

प्युपचिन गुरु विप्रा धारयन्मण्डनानि ॥ १० ॥

ऊपर ६ वें श्लोकमें बता चुके हैं, कि स्त्रीको पतिके सभी सगे सम्बन्धियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये और पतिके प्रिय पदार्थोंपर स्त्रीको किस तरह और कैसी दृष्टि रखना चाहिये । अब ऐसे विषयपर पत्नी-कर्त्तव्य बता रहे हैं, जिसका पालन करना, स्त्रीके लिये, एक बहुत बड़ी परीक्षा है, एक जबदस्त कसौटी है और पत्नी-हृदयकी गहरी परीक्षा लेनेवाले एक यन्त्रके समान है । कोई भी पत्नी किसी दूसरी स्त्रीको अपनेपतिको पर्यक-शायिनी नहीं देख सकती । ऐसी ही परिपाटी है । अपने प्रेमके आधार, अपने हृदयके धनको अपना हृदय किसी दूसरी स्त्रीको देते देखते ही पत्नीके सरसे तलवे तक आग लग जाती है, हृदयमें अत्यन्त वेदना उत्पन्न होती है और मन ईर्ष्या द्वेषसे परिपूर्ण हो जाता है । इस आँचको बर्दास्त न कर सकनेके कारण कितनी ही स्त्रियाँ गृहत्यागिनी हो

-दाम्पत्य-विज्ञान-

जाती हैं, कितनी ही आत्मघात कर लेती हैं और कितनी ही घरमें घोर कलह मचाती हुई अपना, अपने पतिका और उस अन्य प्रणय-सहचरीका जीवन कष्टकित, कलुषित और विपत्तिपूर्ण बना डालती हैं। यही होता है और इसका परिणाम इसके सिवा और कुछ नहीं होता, कि कष्ट, मनस्ताप और सन्ताप प्राप्त होता है। उचित तो यही है, कि पति एकपत्नी-व्रत धारण किये रहे। पतिकी योग्यता इसीमें प्रकट होती है, कि वह अपना प्रेम एकको छोड़कर दूसरेको न दे और आदर्श पति भी वही कहला सकना है, जो अपने प्रेमका आधार एकहीपर रखता है, परन्तु इस सृष्टिमें सर्वत्र एक समान ही आचार व्यवहार नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्थामें यदि ऐसा मौका आ जाये कि पति किसी अन्य रमणीको भी अपनी अङ्कशायिनी बना ले, तो उस समय बड़े धीरजकी जरूरत है, बड़ी सहनशीलताकी आवश्यकता है और पतिके हृदयपर पुनः अधिकार जमा लेनेके लिये एक बहुत बड़ी तपस्याका प्रयोजन है। यह तपस्या है, पतिको सदैव यह दिखाते रहना कि “राज्ञी हूं उसीमें जिसमें रज्ञा है तेरी।” पतिसे यह सदा प्रदर्शित करते रहना कि मैं अपने व्रतमें अटल हूं और अपने इस अटल “पति-प्रेम” द्वारा, अपने इस मूक

[२७३]

-दाम्पत्य-विज्ञान-

कर्त्तव्य पालन द्वारा, तथा अपने उस शान्त प्रेम-परिचय द्वारा पतिको यह बता देना, कि तुम अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो रहे हो। जो स्त्रियाँ इस ओर ध्यान नहीं देती और इसके विपरीत कलह, विद्वेष अथवा गृह-त्याग आदि कर बैठती हैं, वे इसमें सन्देह नहीं, कि अपने ऊपर ही विपत्तिका पहाड़ ढाह लेती हैं। इसलिये, रति-रहस्याचार्यका कथन है, कि यदि ऐसा मौका आ पड़े तो पत्नी उस सपत्नीपर भी प्रेम पदर्शित करती रहे, उसकी सन्तानपर अपनी सन्तान जैसा प्रेम-प्रदर्शन करती रहे, इससे निजके प्रति कभी पतिके हृदयमें विराग उत्पन्न नहीं होगा और उसका आदर सम्मान ज्योंका त्यों बना रहेगा। इसके अलावा यदि पति कहीं विदेश चला गया हो तो बड़े लोगोंकी सेवा करती रहे और मांगल्यमात्र धारण करे। यह कहनेका तात्पर्य यह है, कि पतिके न मौजूद रहनेपर जो औरतें शृङ्गार वगैरह किया करती हैं, उनके चरित्रपर लोगोंको सन्देह होने लगता है। इसलिये सधवा वेश जिससे मालूम हो, अमांगल्य जिसमें न सूचित हो उतना ही अपना शृंगार करे। और

उपगुरु शयनं च स्वल्पतां च व्ययस्य

प्रतिदिनमपि कुर्यादस्य वार्त्तानुसारम्।

-दाम्पत्य- विज्ञान-

अनवसितविधानेऽप्यस्य निर्वाहयत्नं

व्रतनियमविधिं च क्षेमसिद्धये विदध्यात् ॥ ११ ॥

घरमें जो उससे बड़ी बूढ़ा हों, उनके पास सोये, जिसमें सदा उसके चरित्रपर सबकी निर्मल धारणा बनी रहे, हमेशा कम खर्च हो इसपर ध्यान रखे और हमेशा पतिकी बातोंको ही, स्मरण करतो हुई, लोगोंसे उसका समाचार पूछती रहे। अपने पतिके ऐसे काम जिन्हें वह अधूरा छोड़ गया हो और जिन्हें वह कर सकती हो, उन्हें बराबर करती रहे और पूरा करती रहे। पतिके मंगलके लिये हमेशा दान-पुण्य, व्रत उपवास आदि करती रहे। इसके अलावा

स्वजनगृहमुवेयात् प्रक्रमे सद्वितीयः।

न चिरमिह बसेच्च प्रेयसि त्वागते सा ।

अविश्रुतवपुषं स्वं दर्शयेदुत्सवादी ।

प्रथमपि विदध्यादाहरेच्चोपहारम् ॥ १२ ॥

यदि अपने नाते-रिश्ते या स्थजनमें कोई उत्सव आदि हो तो अकेली न जाये, किसी दासीको साथ लेकर जाये। वहाँके कामोंको यथासाध्य करे, उसके यहां रह न जाये और घर लौटकर अविकल चित्तसे पतिके आनेपर उसके पास जाकर उत्सवका सब हाल वर्णन कर, यदि कुछ लायी हो तो उसे प्रदान करे।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

पत्नी कर्त्तव्यके विषयमें दिये हुए इन उपदेशोंपर जो स्त्रियाँ ध्यान रखेंगी, इसमें सन्देह नहीं, कि वे सदा सुखी रहेंगी और उनका जीवन आनन्दमय बना रहेगा । हम भारतमें फिर एकबार पूर्वके जैसा ही सुख-सौभाग्य देखना चाहते हैं और उसके लिये बहुत जरूरी है, कि स्त्रियाँ आदर्श गृहिणी बनें । तभी वे सुन्दर और सुबुद्धि-सम्पन्न सन्तानों-की माता हो सकेंगी । उनका परिवार सुख-समृद्धिसे परिपूर्ण, उनका स्वास्थ्य सुन्दर और सुदृढ़ तथा उनकी गृहस्थी सदा सदाचार और आनन्दसे परिपूर्ण रहेगी ।





सुखी-जीवन ।



इस पुस्तकके गत अध्यायोंमें हम विवाह और स्त्री-पुरुषके सम्मिलित जीवनके सम्बन्धमें बहुत सी बातें बता चुके हैं। इस हिसाबसे, इस अध्यायका लिखना एक प्रकारसे अनावश्यक है। परन्तु फिर भी कुछ ऐसी बातें और भी बाकी रह जाती हैं, जिन पर यदि स्त्री पुरुष ध्यान दें तो उनका जीवन प्रेम-पूर्ण, सुख-भरा तथा अत्यन्त ही आदर्श हो सकता है।

इसका एक कारण और भी है। इस संसारमें शरीर तत्त्वको ध्यानमें रखकर हजारोंमें एकाद ही विवाह होते हैं और बहुतसे विवाह तो इसी ढङ्गसे हो जाते हैं, कि दैहिक-गठन, प्रभृति विषयोंपर विचार ही नहीं किया

-दाम्पत्य-विज्ञान-

जाता। वर्तमान भारतीय विवाह प्रथा ही कुछ ऐसे ढंगकी हो रही है। इस अवस्थामें, इस परिच्छेदको अत्यन्त ध्यान-पूर्वक मनन कर, विवाहित स्त्री-पुरुषोंको अमलमें लाना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं, कि यदि विवाहित स्त्री-पुरुष नीचे दिये हुए बहुत ही सुगम तथा उपयोगी नियमोंका पालन करेंगे तो वे विवाहित जीवनकी बहुत सी दुःखद घटनाओं और अप्रोतिकर परीक्षाओंसे सहज ही निस्तार पा जायेंगे।

बात यह है, कि स्त्री-पुरुषोंका चुनाव भारतमें अब स्वयम्बर-प्रथा या वर-कन्याका देखकर, उनकी समस्त अवस्थाओं पर विचार कर और उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिको देखकर होता ही नहीं है। इसके अतिरिक्त विवाह होने पर, उस अवस्थामें, जब कि द्विरागमन हो जाता है और सम्मिलित जीवन आरम्भ होता है, मानव प्रकृति ही कुछ इस ढंगकी होती है, कि कुछ दिवस तो एक प्रकारका नशा सा चढ़ा रहता है और अधिक मनुष्योंमें एक स्वार्थपर वासना अपना खेल दिखाती रहती है। इसके बाद ही जब कि वह नशा टूटता है—जब कामासक्त मनका लोभ कम पड़ता है, तब मनकी वह प्रसन्नता, वह खुश मिजाजी, चाल-ढालका

-दाम्पत्य- विज्ञान-

वह प्रेमासक्त भाव, धीरे धीरे कम होने लगता है। इस अवस्थामें विदेशोंमें तो यहाँतक नौबत आ पहुँचती है, कि कुछ ही दिन बाद, तलाक देने या अलग हो जानेकी बारी आ पहुँचती है। यद्यपि भारतमें ऐसा नहीं होता, परन्तु उसके स्थान पर, भारतमें धीरे-धीरे मतभेद और इसके बाद कलह आरम्भ हो जाती है। इसका कारण “असामञ्जस्य” माना जाता है। इसके बाद, विदेशोंमें, वे जोड़े जो इस असामञ्जस्यके कारण अलग हो जाते हैं, अथवा असामञ्जस्यके कारण जो एकत्र जीवन व्यतीत करना अप्रीतिकर समझते हैं, तुरन्त ही दूसरा विवाह करनेके लिये उतावले हो जाते हैं। मानो इस अवस्थामें पड़कर उनमें विवेककी मात्रा बिल्कुल हो नहीं रह जाती और परिणाम पर वे कुछ ध्यान ही नहीं दिया चाहते। अतएव, विवाहित अथच सुखी-जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सबसे आवश्यक और जरूरी यह है, कि स्त्री-पुरुष दोनोंको इन्द्रिय-संयमके नियमोंको अच्छी तरह समझ और हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। हमारी धारणामें, इन नियमोंका ठीक ठीक पालन ही विवाहित जीवनको सुखी और प्रेमपूर्ण बनानेका सबसे बड़ा और प्रधान उपाय है। संयमशील जीवन ही सच्चा और वास्तविक प्रेमपूर्ण जीवन

-दाम्पत्य-विज्ञान-

है। इसके विपरीत कामासक्त जीवन दो आत्माओंको एकत्र करनेके बदले एक बहुत बड़ा अन्तर बीचमें उत्पन्न कर देता है। अतएव, आवश्यक यह है, कि पतिको स्त्रीपर ही इसका विचार और निर्णय करनेका भार छोड़ देना चाहिये, कि कब वह माताके पवित्र जीवनको आरम्भ करना चाहती है। विचारनेकी बात है, कि यदि पत्नीपर ही यह भार छोड़ दिया जायगा तो स्त्री-जाति—विवाहित स्त्री-जातिके हृदयसे एक अन्धेरा बादल आप ही आप हट जायगा। जब वह यह देखने लगेगी, कि उसे अपने शरीरका पूर्ण अधिकार है, उसे अपने शरीरके सम्बन्धमें किसी विषयको स्वीकार करने या न करनेका तबतकके लिये पूर्ण अधिकार है, जबतक वह अपना मातृत्व जीवन आरम्भ नहीं करना चाहती हैं। परन्तु आह ! अभी इस बात पर कौन ध्यान देता है ! यद्यपि सुधारके पक्षपाती लेखक और वक्ता इस सम्बन्धमें पूरी पूरी चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु अभी दिल्ली दूर ही दिखाई देती है और मालूम होता है, कि अभी स्त्री-जातिके भाग्यमें दुःख भोगना, कष्ट सहना और उस कालके आनेकी राह देखना बड़ा है।

परन्तु यदि ऐसा अवसर आ जाये, कि स्त्री-पुरुष

-दाम्पत्य- विज्ञान-

दोनों ही विचार कर इस बातको प्रतिज्ञा कर लें, कि वे प्राकृतिक नियमके अनुसार, पवित्र, शुद्ध, संयमशील जीवन व्यतीत करेंगे, तो इसमें सन्देह नहीं, कि उन्होंने दो आत्माओंको एकत्र करनेकी राह बहुत कुछ साफ कर ली है।

इस संयमशील जीवनको व्यतीत करनेका एक बढ़िया उपाय यह है, कि वे एक बिस्तरे पर न सोया करें। दो या अधिक मनुष्योंको एक बिस्तरे पर सोना ही न चाहिये। क्योंकि इनके एकत्र होनेपर जिसकी जीवन-शक्ति दुर्बल है, वह बलवानकी शक्तिको अपने शरीरमें टानेगा और इस तरह बलवान दुर्बल होता जायगा, उसमें स्नायविक दुर्बलताके सब लक्षण दिखाई देने लगेंगे और धीरे धीरे उसके स्वभावमें चिड़चिड़ापन, रुक्षता और छिद्रान्वेषण प्रभृति दुर्गुण उत्पन्न हो जायँगे। इसी कारणसे अवस्था प्राप्त मनुष्योंके साथ लड़कोंको न सोने देना चाहिये। पुरुषको पुरुषके साथ, स्त्रीको स्त्रीके साथ और उन पतियोंको अपनी पत्नियोंके साथ न सोना चाहिये, जो वास्तविक पवित्र और प्रेमपूर्ण विवाहित जीवन व्यतीत करना चाहते हों।

खास कर उन स्त्रियोंको तो अपने पतिके बिस्तरे पर

-दाम्पत्य- विज्ञान-

कदापि न सोना चाहिय, जो यह समझती हैं, कि उनके पतिने उनके स्त्रीत्वका दुरुपयोग किया हैं। साथ ही उन्हें अपने कष्टोंको किसी अपने प्यारेसे प्यारे मित्रसे भी न कहना चाहिये, क्योंकि दसमें नौ उन्हें इसी ढंगके मिलेंगे, जो उनके कष्टोंसे सहानुभूति तो दिखायेंगे, कहेंगे, कि वास्तवमें तुम्हें बहुत कष्ट दिया गया है और अब तुम इनका साथ छोड़ दो अथवा भारतीय प्रथाके अनुसार उसमें थोड़ा नमक मिर्च लगाकर, एक बातको दस मनुष्योंसे इस तरह कह देंगे, कि वह तुम्हारे पति तक पहुंच जायगी। उस समय परिणाम और भी दुःखद होगा। क्योंकि भारतमें सम्बन्ध विच्छेद तो हो ही नहीं सकता। इसका सबसे उत्तम तरीका यह है, कि बहुत ही शान्तभावसे अपने दुःखोंको अपने पतिसे ही कहो। सम्भव है, कि उसे तुम्हारे दुःख, कष्ट या मनोभावोंका पता न हो और इसी कारणसे वह ऐसे काम करता हो, जो तुम्हारी इच्छाके विपरीत हैं। सारांश यह कि, तर्क वितर्क अथवा झगड़ा करनेकी जरूरत नहीं है, बहुत ही शान्तभावसे अपना मनोभाव उनपर प्रकट कर देना चाहिये।

सम्भव है, कि संसारमें पूर्णता या त्रुटिहीनता, निकट भविष्यमें ही दिखाई देने लगे, परन्तु अभी तक मानव-

-दम्पत्य-विज्ञान-

जातिमें वे गुण नहीं दिखाई देते जो, उसे वास्तविक सत्य तक पहुंचा दें। इसलिये स्त्री या पुरुषमें त्रुटिका न दिखाई देना, एक प्रकारसे असम्भव है। हम सबमें कुछ न कुछ दोष हैं, हम सभी कुछ न कुछ अपराध, भूल अथवा भ्रम कर बैठते हैं। इनमें कुछ ऐसी त्रुटियाँ भी हैं जो नगण्य हैं, जरा ध्यान देने और चेष्टा करनेसे ही वे फिर नहीं दिखाई दे सकती हैं। परन्तु उनमें कुछ ऐसी सुस्पष्ट और तीव्र हैं, कि उनका मनुष्यके मन पर बड़ाही जवर्दस्त प्रभाव पहुंचता है और वे आत्माको हीन कर देती हैं। छोटे छोटे दोषोंमें हम मतभेद, तर्क-वितर्क तथा क्षणिक क्रोधकी गणना कर सकते हैं—ये सब भी अपूर्ण मानव-आत्माके उद्गार हैं। हम स्त्री-पुरुषोंसे इन्हें भी त्यागनेकी चेष्टा करनेका पूर्ण आग्रह करते हैं। क्योंकि ये ही चिनगारियाँ कभी कभी गार्हस्थ्य-जीवनको दग्ध कर देनेवाली भीषण आगका रूप धारण कर लेती हैं। यह भी एक बड़े आश्चर्यकी बात है, कि पुरुष और खासकर स्त्री-जातिके एक बड़े भागमें ये छोटी छोटी बातें—तर्क वितर्क, मतभेद, साधारण कष्ट आदि इतना भीषण प्रभाव जमा लेते हैं, कि बड़ेसे बड़ा अपराध भी वैसा नहीं कर पाते। अतएव, जब कभी ऐसी बात दिखाई दे,

-दाम्पत्य- विज्ञान-

जिससे स्त्री-पुरुषके मनोभावोंमें अन्तर पड़नेकी सम्भावना हो अथवा जब कभी किसीसे किसी प्रकारकी भूल हो जाये, तो विवाहित जीवनको सुखी बनानेकी इच्छा रखने वालेको तुरन्त अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिये और खुले शब्दोंमें अपनी गलती प्रकट कर देनी चाहिये। पुरुषोंकी प्रकृति ही कुछ ऐसी होती है, कि ऐसा करना उन्हें अत्यन्त कष्टकर मालूम होता है। परन्तु मन-मिलाव करनेका सर्वोत्तम उपाय यही है, कि जो किया है उसे स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करो और भविष्यमें वैसा कार्य फिर न करनेकी प्रतिज्ञा करो। महात्माओंका कथन है, “अपराध होंगे ही” साथ ही उन्होंने उपाय भी उसी स्थान पर और सदाके लिये बता दिया है—“जाओ, और उसे तथा अपनेको एकान्तमें सुना दो।” इस नियमका उल्लंघन केवल स्त्री-पुरुषके मनोभावों और व्यवहारोंमें ही अन्तर नहीं डाल रहा है, बल्कि इससे नातेदार अड़ोसी-पड़ोसी तथा मित्र मण्डली सभी कष्ट पा रहे हैं।

वेलगर नामका एक बड़ा ही चतुर-बुद्धिमान लेखक हो गया है। उसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है—“स्त्रियोंसे मित्रता” उसमें उसने लिखा है—

“पतिको अपने परिवारका एक ऐसा सच्चा और शुद्ध

-दाम्पत्य- विज्ञान-

संरक्षक होना चाहिये जो सदा ज्ञान, गुण और इज्जत प्रभृति देवत्व-भावपूर्ण रत्नोंकी प्राप्तिके लिये अनवरत चेष्टा करता रहे, अपनी स्त्रीके अपराधों पर सदा उदार तथा दयापूर्ण दृष्टि रखे, सदा उसके उत्तम गुणोंका खयाल करता रहे। उसके उत्तम विचारोंमें सदा हृदयसे सहायता पहुंचाता रहे, इस अवस्थामें भी स्त्री यदि उसका सम्मान न करे अथवा उससे विनम्र और मधुर व्यवहार न करती रहे, तो समझना चाहिये कि वह परम मूर्ख है।”

स्त्रियोंको अपने पतिके साथ, जबतक सम्पर्क रहे तब-तक, उन्हें अत्यन्त नम्रता, स्वच्छता, सहानुभूति, अकाश्य, सत्य, मूक तथा सन्तोषजनक सहनशीलताका व्यवहार करना चाहिये। अपने व्यवहार तथा बातोंमें मतभेद प्रकट ही न होने देना चाहिये। ऐसा व्यवहार करने पर यदि वह पति हैवान नहीं है, तो अवश्य ही उसकी इज्जत करेगा, सदा व्यवहार करेगा और लगभग सभी अवस्थाओंमें उसको प्यार करेगा और सदा उसके साथ सुखसे जीवन बितायगा।

परन्तु यदि पुरुष नीच और दुराचारी अथवा निरङ्कुश या विवेकहीन है, जिसमें किसी प्रकारके सुन्दर या

-दाम्पत्य-विज्ञान-

प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका विचार ही नहीं उत्पन्न होता और यदि स्त्री ऐसी है, कि उसे किसी प्रकार शासनाधीन नहीं रखा जा सकता, कर्कशा, बात बातमें भगड़नेवाली, जरासामें ही थक जानेवाली, छोटी छोटी बातोंमें बिगड़ जानेवाली है, जिसके सुखके फूल उसकी उत्तेजक प्रकृतिके कारण, खिलते ही मुर्झा जाते हैं, अथवा जहां प्रत्येक कामका उलटा ही असर पुरुष-स्त्री दोनोंके स्नायुओं पर जा पड़ता है, जहां एक, दूसरेके सुख और शान्ति पर विचार ही नहीं करता, वह गृहस्थी, वह सम्मिलित जीवन अवश्य ही दुःख, अशान्ति और हानिका आगार हो जाता है।

असत्यता, विवेक-हीनता, कठोरता, धिक्कार, ऊँचे स्तरमें चिल्लाना और बारम्बार किसी कामके लिये मनाही या आज्ञा देना—जिसका मतलब किसीकी स्वतन्त्रतामें बाधा पहुंचाना होता है—ये सभी गृहस्थीके नाशका काम करते हैं। मानो ये गार्हस्थ्य-जीवनके विष हैं। इनके द्वारा ही गृहस्थीमें उत्तेजना फैलती है, गृहस्थी असह्य और यन्त्रणादायक हो जाती है। इसके विपरीत कुछ ऐसे औषधके प्रयोग भी हैं, जो गार्हस्थ्य-जीवनको मधुर और गृहस्थीके मनुष्योंको सौभाग्यशाली बना देते हैं।

—दाम्पत्य-विज्ञान—

वे उपाय—औषधके प्रयोग हैं—शुद्धता, उच्च विचार, उन्नत बुद्धि, मधुर वचन, शान्त और सुशील व्यवहार, शान्त मस्तिष्क, अनावश्यक आज्ञाओं और वचनोंको रोकना और उदारता पूर्वक मानव-स्वतन्त्रताकी रक्षा करना। स्वतन्त्रताकी अपेक्षा प्रेम मनुष्यको अधिक वाधित करता है। मनुष्य सज्जनता और साधुताका आवरण गुलूबन्दके रूपमें नहीं बल्कि आभूषणके रूपमें पहनता है। कोई भी आशीर्वाद तबतक उतना प्रिय नहीं मालूम होता, जबतक उसका आधार नेकी—नेकनीयती नहीं प्रकट हो जाती। जब स्त्री-पुरुषका जोड़ा इस भावसे रहता है—उसका हृदय आइनेकी तरह शुद्ध दिखाई देता है, तब वह गृहस्थी स्वर्गका नन्दन कानन हो जाती है।

मानव-विचार, पुरुष और स्त्री, दोनोंके ही, अधिक कर उन भोजनके सामानों पर निर्भर हैं, जो वे खाते हैं और जिससे वे अपना पेट भरते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि हजारों ऐसे ही आदमी मिलेंगे—इनमें बच्चेसे लेकर पिता तक शामिल किये जा सकते हैं, जिनमें मस्तिष्ककी उत्तेजनाके कारण अपराध या बुराईयाँ देखी जाती हैं और जिनके उत्तेजक प्रकृतिके कारण ही गृह अशान्तिमय हो रहा है—पर इसको जड़ अनपच या

-दाम्पत्य- विज्ञान-

अजीर्ण रोग है। वे ऐसा भोजन करते हैं, जो अच्छी तरह या तो पकाया नहीं जाता अथवा जो स्वास्थ्यके लिये लाभदायक नहीं है। परन्तु वे इन बातोंपर विचार नहीं करते। जीभके स्वादवश, या जो सामने आया खा लेते हैं। वह भोजन ठीक परिपाक नहीं होता और इसीका यह परिणाम होता है, कि बुखार, थकावट अकाल पक्वता आदि रोग दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं होता है, इससे भी बढ़कर भयङ्कर बात यह हो जाती है, कि इन अस्वाद्य पदार्थोंका रस, रक्तमें ठीक परिणत तो होता नहीं है, बल्कि इन रोगोंके कारण प्रकृतिमें अन्तर आ जाता है। रक्तके द्वारा मस्तिष्कमें एक ऐसी प्रक्रिया होती है, कि दूसरोंका दोष आदि देखने और छिद्रान्वेषण करनेका भाव पैदा हो जाता है और इसी वजहसे घरमें तथा अन्य मनुष्योंसे भी कलह हुआ करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि सीधा सादा आहार-विहार न होनेके कारण ही मनुष्योंको सहजमें ही क्रोध आ जाता है। वे दूसरोंका दोष देखने लगते हैं तथा आपसमें झगड़ा होने लगता है। जरूरत यह है, कि लोगोंको सीधा-सादा अनुत्तेजक पदार्थ भोजन करना और केवल दिनमें दो बार भोजन करना चाहिये, जिससे कि

-दाम्पत्य-विज्ञान-

उनका स्वास्थ्य ठीक रहे, प्राकृतिक सौन्दर्य बना रहे तथा मनकी गति चञ्चल न हो जाये ।

विवाहित जीवनको सुखपूर्ण चाहनेवालोंके लिये दूसरी आवश्यक बात है—कार्य । इस संसारमें जीवन धारण करनेके लिये कार्य करना बहुत जरूरी है, क्योंकि इसके बिना गृहस्थी चल नहीं सकती और उसके बाद आराम । इन दोनोंसे हमारे जीवनको सुखमय और पवित्रताकी ओर अग्रसर होनेमें बहुत सहायता मिलती है और इसीसे हमलोग वह वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारा ध्येय है । उदाहरणके लिये मान लीजिये, कि कोई स्त्री आलसिन है और खासकर ऐसी आलसिन जो अपने बनाव शृङ्गारमें ही व्यस्त रहती है, तो इसमें सन्देह नहीं, कि ऐसा अवसर आयगा, जब पहले गृह-कलह, उसके बाद विपत्तियां और फिर आपसमें मन-मुटाव और अन्तमें सम्बन्ध-विच्छेद तककी नौबत आ पहुंचेगी । ऐसा कोई आदमी हमें बताइये, जो बिना कुछ किये जीवन धारण किये हो और हम आपको बता देंगे, कि यह ढोंग हैं । यदि पुरुष या स्त्रीके पास इतना काम नहीं है, कि दिन भर वे उलझे रहें, तो आप विश्वास रखें, कि यह भी निश्चित है, कि मानसिक या शारीरिक

[२८६]

-दाम्पत्य-विज्ञान-

दोष उनमें अवश्य घुस जायेंगे। यह बात प्रत्येक विवाहित स्त्रियों-पुरुष पर भी इसी तरह लागू होती है और जो एकत्र सुखी-जीवन व्यतीत किया चाहते हैं, उन्हें तो अनवरत कार्य-रत रहनेको पूरी पूरी चेष्टा करनी चाहिये।

काम करनेमें हमें इस बात पर भी पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये, कि हमारा ध्येय : क्या है। कार्य, धन, ऐश्वर्य, सोभाग्य और आराम सबका हो परिचायक है। परन्तु यह भी दैवी नियमके अधीन हैं।

अधिकांश मनुष्य धन इसलिये उपार्जन करना चाहते हैं, कि उससे सुख मिलेगा। परन्तु क्षण भर विचार करनेसे ही मालूम हो जायगा, कि धनसे सुख नहीं मिलता। एक सुखका ज़रिया भर हो जाता है। एक पैसा पासमें रहे बिना भी मनुष्य सुखी रह सकता है। परन्तु इसके लिये उसका मन संयत होना चाहिये तथा हृदय और मस्तिष्ककी गति शुद्ध होनी चाहिये। आपको ऐसे मनुष्य दिखाई देंगे, जो दरिद्र हैं और जिन्हें दोनों शाम भोजनका ठिकाना नहीं है। पर उनमें जीवन दिखाई देता है, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। उनकी प्रकृति उत्तम और मधुर है और वे बड़े ही संयमशील और सहनशील

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हैं। ऐसा मित्राज होने पर वह राजमहलमें रहने अथवा तख्त पर बैठने पर भी सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार ही करेगा।

हमलोगोंको नित्य ही ऐसे मनुष्य दिखाई देते रहते हैं, जिनके घरमें तर्क-वितर्क हुआ करता है, जिनकी प्रवृत्ति अच्छी नहीं है, जिनका स्वभाव दुष्ट है, जो सदा असन्तोषी बने रहते हैं, जा सबमें छिद्रान्वेषण ही किया करते हैं और जा भोजनपर बैठते ही सबसे पहले नाक मुंह सिकोड़ते और निन्दा शिकायत करने लगते हैं। जिनकी प्रत्येक बातके अन्तमें कठिनाई और उनकी तर-दु-दों तथा तकलीफोंका जिक्र रहता है और रातमें सोनेके समय भी जो चिड़-चिड़ाने या झूलानेसे बाज नहीं आते। यदि आप इन मनुष्योंसे इसका कारण पूछें, तो वे यही उत्तर देंगे, कि उन्हें किसी बातका अभाव है। वह अभाव चाहे उत्तम गृह, बढ़िया वसन-भूषण, या और भी उत्तम ठाट-वाट, विनम्र आज्ञा-पालक बालक, पति अथवा साफ-सुथरी विनम्र सुरचिशील पत्नीके रूपमें ही हो। सारांश यह कि वे कहेंगे, कि इन अभावोंके कारण या किसी एक अभावके कारण उनका मस्तिष्क ठीक-ठिकाने नहीं रहता। कभी कोई बदमाश रसोइया—उनके क्रोधका कारण हो जाता है, तो कभी आलसी मजदूरिन

-दाम्पत्य-विज्ञान-

बीचमें आ पड़ती है, या कभी बदमाश गाड़ीवानही उनकी प्रकृतिको गर्म कर देता है। इसका कारण यह है, कि उन्होंने ईश्वरी कृपाकी प्राप्तिकी अपेक्षा धन प्राप्तिको ही विशेष महत्व दे रखा है, वे समझते हैं, कि धनसे ही सब काम हो जायगा। पर हमारा तो यह कथन है, कि ऐसे मनुष्योंको यह बात हर घड़ी याद रखनी चाहिये और अच्छी तरह विश्वास कर लेना चाहिये, कि जो मनुष्य किसी साधारण अवस्थामें अपनेको सुखी न बना सका, वह अवस्था बदलनेपर भी अपनेको सुखी नहीं रख सकता। जिस मनुष्यने हृदयमें ही एक ऐसा फोड़ा पाल रखा है, जो उसके रक्तको पी रहा है, वह जहाँ जायगा, वहीं उस फोड़ेको साथ लेता जायगा। और खासकर यदि वह फोड़ा कहीं अशरीरी, ईर्ष्या द्वेष, अभ्यासगत असन्तोष, प्रचण्ड दुष्ट प्रकृति आदिके रूपमें हुआ, तो इसमें सन्देह नहीं, कि चाहे वह सोनेसे मढ़ ही क्यों न दिया जाये, पर वह सोनेकी सब चमकको नाश कर देगा। इस समय चार पैसे होनेपर मनुष्य जो कुछ है, लाख रुपये होनेपर भी अवश्य ही गुणोंमें वैसा ही रहेगा और उस अवस्थातक वैसा ही रहेगा, जबतक उसका हृदय न बदल जाये। एक बात और भी है। इसे ही ध्रुव सत्य न मान लेना होगा।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

ध्रुव सत्य कुछ और भी भयानक हैं और वह यह है, कि धन-हीन अवस्थामें बुरी प्रकृति—कु-स्वभाव वालोंकी जो अवस्था और जैसा मिजाज रहता है, धन मिलनेपर उससे वह कहीं अधिक बढ़ जाता है—अर्थात् यदि हृदय नहीं बदल गया है, तो एक कंजूस और भी मक्खीचूस हो जायगा, शराबी और भी शराब पाने लगेगा, व्यभिचारी अपने व्यभिचारकी मात्रा बढ़ा देगा और असन्तोषी चिड़-चिड़ा, अपनी चिड़-चिड़ाहटकी मात्रा दूनी कर देगा । इसीलिये बाइबलमें एक स्थानपर आकाँक्षाओंकी पूर्तिके सन्बन्धमें लिखा है—पहले दैवी शक्ति और उसकी सत्यताको प्राप्त करा—अर्थात् यदि तुम वर्त्तमान अवस्थामें सुखी और प्रसन्न नहीं हो तथा विशेष सुख और आनन्दकी अभिलाषा रखते हो, तो तुम्हें सबसे पहले अपना हृदय बदल डालना चाहिये, अपना स्वभाव बदल देना चाहिये—इसके बाद अन्य साधन “धनके बिना ही” आपसे आप तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे ।

पतिकी भाँति ही, स्त्रीको भी बड़ी सावधानतासे घरेलू भेदोंको गुप्त रखना चाहिये । बहुतेरी स्त्रियोंकी यह प्रकृति होती है, कि वे अपने पड़ोसियोंके घर जाती हैं, और कुछ नमक मिर्च लगाकर, वे सभी घटनाएँ कह आती

-दाम्पत्य-विज्ञान-

हैं, जो उनके घरमें होते हैं। यह बड़ा ही बुरा अभ्यास है। ध्यान रखो, तुम दोनोंमें चाहे कितना ही मत-भेद, उत्तेजना अथवा छोटी या बड़ी दुःखदायी घटनायें हो जायें पर स्त्री-पुरुष तथा ईश्वरके सिवा चौथा न जान सके।

जोंकीने अपना एक कहानीमें बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है। वह लिखता है:—

विवाहके बाद, जब स्त्री-पुरुषका प्रथम एकान्त मिलन हो, उस समय स्त्रीको पतिसे धर्म-पूर्वक शपथ खिलानी और स्वयं भी खानी चाहिये। धर्म-पूर्वक आपसमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये, कि कभी आपसमें तर्क-वितर्क न करेंगे, यहाँतक कि परिहासके रूपमें भी यह काम न करेंगे। कभी आपसमें क्रोधपूर्वक वार्त्तालाप न करेंगे, कभी मिजाज गर्म न करेंगे। हां, कभी ऐसा न होना चाहिये, क्योंकि परिहास रूपमें तर्क-वितर्क करना, क्रोध प्रदर्शन या चिढ़ाने अथवा दिल्लुगी करनेके लिये नकली क्रोध दिखाते रहनेपर वैसाही अभ्यास हो जाता है। दूसरा वादा यह होना चाहिये, कि कभी आपसमें किसी बातको न छिपायेंगे। चाहे कैसा भी कारण उपस्थित हो जाये पर मनान्तर उत्पन्न करनेवाला यह दोष न घुसने देंगे, जिसमें सदा दोनोंका हृदय चमकीले स्वच्छ दर्पणकी भाँति एक दूसरेको

-दाम्पत्य- विज्ञान-

दिखाई देता रहे। यदि तुम दोनोंमें किसीसे अपराध हो जाये तो क्षणभर भी विलम्ब या इतस्ततः न करो, भट अपना दोष स्वीकार कर लो, पूछनेके पहले ही कह दो और जिस तरह तुम दोनों आपसमें कोई बात न छिपाओ, उसी तरह दृढ़ प्रतिज्ञ रहो, कि तुम्हारा भेद, तुम्हारी बातें कोई जानने न पाये—तुम्हारा पारिवारिक रहस्य तुम तक ही रहे, यहां तक कि तुम्हारी घराऊ घटना तुम्हारी हृदयकी बातें और तुम्हारा हृदय, तुम्हारे माता पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, यानी संसारसे छिपा रहे। ईश्वरकी सहायतासे तुम दोनों अपना मनोगृह अलग ही बनाओ। यदि किसीको तुम अपने साथ मिलाओगे, तो दोसे तीन होते ही, वह अपना एक दल बाँधेगा और तुम दोनोंके बीचमें एक दीवार-सी खड़ी होने लगेगी। यह कदापि न होना चाहिये। इस बातकी भी आपसमें प्रतिज्ञा कर लो। प्रत्येक प्रलोभनके अवसरपर इस प्रतिज्ञाको स्मरण रखो। इसका मज़ा तुम्हें बहुत जल्द मिलेगा। तुम्हारी आत्मा-ओंकी उन्नति होगी और थोड़े ही दिन बाद, तुम दोनोंका हृदय एक हो जायगा। अतः यदि विवाहित जोड़ीको विवाहके समय ही ये गुप्त बातें समझा दी जायें, तो न जाने कितनेही परिवार, अशान्ति, कलह और नाशसे बच जायें।

-दाम्पत्य-विज्ञान-

जब विवाहित स्त्री-पुरुष वास्तवमें स्वच्छ सत्य तथा सुखी-जीवन प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हों तो उनका सर्व प्रधान लक्ष्य इस परिणामकी ओर होना चाहिये, कि दो हृदय, दो विचार और दो मन एकत्र हो जायें—उनमें स्वरूप मात्रका ही अन्तर रह जाये। दो मनोमें एक समान भावका उदय होना ही एकत्रीकरणका सबसे बड़ा गुप्त रहस्य है। मेरा एक ऐसे आदमीसे परिचय है, जिसकी अवस्था अस्सी वर्षकी है। उनकी स्त्री अभीतक वर्तमान है, किसकी उम्र ७५ वर्षकी है। उन्हें पहले पहल देखनेपर मालूम होगा, मानो वे भाई बहन हैं। इसका कारण यह है, कि उन दोनोंमें बहुत ही अधिक समानता दिखाई देती है और यह समानता केवल रूप-रङ्गमें ही नहीं, बल्कि वातचीत, मनोभाव तथा रहन-सहनमें भी है। जब इन दोनोंने विवाहित जीवन आरम्भ किया, जैसा कि सभी करते हैं, उस समय उनकी चाल ढालमें कुछ प्रभेद अवश्य था, परन्तु इस विवाहित जीवनके पचासवें वर्षमें उन दोनोंमें इतनी समानता हो गयी, कि दोनों एक जान दो कालिब हो गये और यह आत्मा और मनका सम्बन्ध उनका समयके साथ उत्तरोत्तर दृढ़ हो होता जायगा। आजकल असुखी विवाह हो रहे हैं, जिनका परिणाम

-दाम्पत्य-विज्ञान-

विदेशोंमें जुदाई और तलाक़ तथा भारतमें कलह और असमयमें संसारसे पयान हो रहा है। ऐसी अवस्थामें ऐसा जोड़ा दिखाई देना एक आश्चर्य और दर्शनीय विषय है। उन्हें ग्यारह सन्तानें हुई हैं, सभी दृष्ट-पुष्ट तथा जीवित हैं। सबसे बड़ी बात उस वृद्धमें यह है, कि वह नित्य रात्रिके समय अपने परिवार वालोंको एकत्र कर बड़े ही मनोयोग पूर्वक धर्म ग्रन्थोंका पाठ और भगवद-भजन करता है। मेरी धारणा है, कि चेष्टा करनेपर ऐसे पुरुष बहुत ज्यादा दिखाई दे सकते हैं और नये भी बन सकते हैं। हमे आशा है, कि इस पुरुषके जीवनको आदर्श मानकर लोग इसका अनुकरण करनेकी चेष्टा करेंगे और उस चेष्टामें उन्हें क्या करना होगा, यह इस पुस्तक तथा इस अध्यायमें उन्हें बता दिया गया है।

जरूरत इस बातकी है, कि दोनोंमें असाधारण सहनशीलता हो क्योंकि सहनशीलता ही दो हृदयोंको एकत्र करनेकी एक कुंजी है। नम्रता और समानता तो क्रमशः पीछे आती हैं। इसके बाद दोनोंमें अच्छे घ प्रेम तथा अकाट्य हृदय-सम्बन्ध हो जाता है।

अब अन्तमें एक बहुत ही आवश्यक विषय हमें और भी कहना है और वह यह है, कि किसी विवाहित परि-

-दाम्पत्य-विज्ञान-

वारमें तबतक सच्ची शान्ति, प्रेम, स्वच्छता शुद्धता और पूर्ण सुख नहीं प्राप्त हो सकता, जबतक उनमें धर्मपर आस्था न हो और वह धार्मिक कृत्यों तथा नियमोंको हृदयसे न पालन करता हो ।

आशा है, विवाहित स्त्री-पुरुष ऊपर दिये हुए साधारण पर आवश्यक रहस्योंपर अवश्य ध्यान देंगे और बुद्धि, सहानुभूति, विवेक और ज्ञानसे शान्तिपूर्वक व्यवहार करेंगे । जिसमें वे नम्रता, सदाशयता, सुशीलता, प्रसन्नता तथा सन्तोषका बाना पहन सकें और उन्हें ऐसी सन्तान हो, जिसे वे आदर्श कह सकें ।



प्रत्येक स्त्री पुरुषके पढ़ने योग्य ! काम-शास्त्रका त्रिद्वितीय ग्रन्थ !!



आजकल बजारमें कोक-शास्त्रके नामसे खूब लूट हो रही है। लोगोंके हाथमें कोक-शास्त्रके नामसे जो पुस्तकें पहुंचती हैं, वे सारहीन, गन्दी और कुमार्गकी ओर ले जाने-वाली होती हैं। इस अभावको दूर करनेके लिये वात्स्यायन मुनिके कामसूत्र, कोका पण्डितके कोक-शास्त्र किंवा रतिरहस्य तथा रति-शास्त्र, रति-मञ्जरी, पञ्चशायक आदि संस्कृत और अन्यान्य भाषाओंकी अनेकानेक पुस्तकोंके सहारे इस ग्रन्थका प्रणयन किया गया है। इस पुस्तकको काम-शास्त्रका निचोड़ कहना चाहिये। प्राचीनकालसे लेकर अबतक काम-शास्त्रके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, वह सभी इस पुस्तकमें संग्रहीत है। इसमें ३० अध्याय और पूरे ५०० पृष्ठ हैं। बहुत ही मोटे एण्टिक पेपर पर छापी गई है। अध्यायोंके नाम यह हैं :—

(१) काम-विज्ञानकी आवश्यकता (२) इन्द्रिय परि-

चालन (३) काम-विज्ञानकी शिक्षा (४) नागरक वृत्त (५) नायिका निर्णय (६) दाम्पत्य प्रेम (७) नारी भेद (८) पुरुष भेद (९) नारीचिन्ह विचार (१०) पुरुष चिन्ह विचार (११) ऋतु-विचार (१२) विवाह (१३) विवाहका आयोजन (१४) सहवास (१५) प्रकृति निर्णय (१६) प्रीति-विधान (१७) सम्बन्ध निर्णय (१८) प्रथम संयोग (१९) स्तम्भन और वाह्यरति (२०) कामोद्दीपन (२१) दैशिक उपचार (२२) कामकी ६४ कलायें (२३) आलिङ्गन (२४) चुम्बन (२५) नख और दशन प्रयोग (२६) आसन (२७) रति अवसान (२८) गृहिणी कर्त्तव्य (२९) गृहिणी रक्षा (३०) वेश्यागमन ।

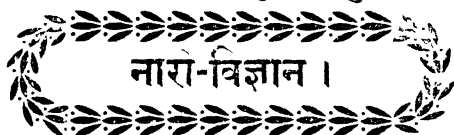
इस पुस्तकमें किन किन बातोंका वर्णन है, यह इन अध्यायोंसे जाना जा सकता है । प्रत्येक अध्यायमें ऐसी ऐसी बातें बतलाई गयी हैं, जो आपको इस ढङ्गकी अन्यान्य पुस्तकमें शायद ही मिलेंगी । हम यह नहीं कहते, कि इसमें “८४ आसनों” के चित्र हैं, न हम यही कहते हैं, कि यह “असली कोक-शास्त्र” है ; क्योंकि यह बातें केवल पाठकोंको धोखा देनेके लिये ही कही जाती हैं, लेकिन हमें फिर भी विश्वास है, कि आप यदि एकबार इसे मँगाकर पढ़ेंगे, तो अबतक पढ़ी हुई सब पुस्तकें भूल जायँगे । दाम्पत्य-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बात आपको इसमें दिखाई देगी । इसे पढ़कर आप अपने

जीवनको सुखी बना सकेंगे और अपनी गृहदेवियोंको भी सुखी कर सकेंगे । मूल्य ३)



चालीस चित्रोंसे सुशोभित यह पुस्तक घर घरकी शोभा बढ़ानेकी एक अद्भुत सामग्री है । आजकल स्त्रियाँ दुबली पतली, निस्तेज और अल्पायु होती हैं । हजारों लाखोंका जीवन तो प्रसूति-गृह—सौगी घरमें ही नष्ट हो जाता है । क्या उन्हें कालके गालसे बचाया नहीं जा सकता है—अवश्य बचाया जा सकता है और वे ही उपाय इसमें बताये गये हैं । इसमें विवाहकी आवश्यकता, विवाह सम्बन्ध, सन्तान समस्या, बन्धत्व और नपुंसकत्व, बन्धत्वसे बचनेका उपाय, नपुंसकता और उसके कारण, मनचाही सन्तान, गर्भ-संचार—पुरुषका वीर्य, गर्भ कब रहता है—गर्भ लक्षण, गर्भ-वृद्धि, गर्भपात, गर्भ-रक्षा, गर्भ परीक्षा, गर्भावस्थाके रोग, गर्भिणीका शारीरिक स्वास्थ्य, गर्भिणीका मानसिक स्वास्थ्य, गर्भकाल, प्रसूति-गृह, प्रसव, प्रसवकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ, जोड़-बच्चे, सन्तान पालन, मनुष्यका शैशवकाल, प्रसूति स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले, जननसे सम्बन्ध रखनेवाले,—सभी विषय दे दिये हैं । ऊपर लिखे प्रत्येक विषयको इस तरहसे समझाया गया

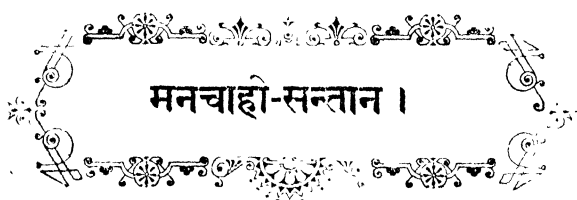
है, इतनी बातें एक एक अध्यायमें बतायी गयी हैं, स्त्रियों-के सम्बन्धकी कोई बात बाकी नहीं रह जाती। एक इसी पुस्तकके सहारे आप हजारों स्त्रियोंको कालसे गालसे बचा सकते हैं। वैंद्य डाक्टर दाई और लेडी डाक्टरोंको पैसे न देकर स्वयं ही उसका काम ले सकते हैं। हम तो उनकेकी चोट कह सकते हैं, कि यदि आप सदा निरोग, बलिष्ठ, उन्नत सन्तानका खिला हुआ चेहरा देखना चाहते हों, अपनी हृदय देवीको सदा प्रफुल्ल देखकर मनमें आनन्द भोग करना और गृहस्थीका पूरा पूरा सुख लूटना चाहते हों, तो इसे पढ़िये। ऐसी उत्तम बहुत ही दलदार लगभग ४०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३)



नारी-विज्ञान ।

स्त्रियाँ परमात्माकी सृष्टिका एक अद्भुत जीता जागता और दमकता हुआ रत्न हैं। इसीलिये इन्हें लक्ष्मीकी उपाधि हैं। परन्तु आजकल इन गृहलक्ष्मियोंकी कैसी दुरवस्था और दुर्दशा हो रही है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। परमात्माकी इस विचित्र सृष्टिका यह इतना सुन्दर फूल अकालमें ही मुर्झा जाता है। कालके गालमें चला जाता है—सूख जाता है। हमारा यह नारी-विज्ञान यही बताता है, कि यह नारी रत्न, यह स्त्री रूपी आकर्षक

पुष्प, कैसे मदा खिला हुआ, आकर्षक, सुन्दर और सुदृढ़ रह सकता है। इसमें बताया गया है, कि नारियाँ अपने यौवनको किस उपायसे सदा स्थायी रख सकती हैं— कैसे उनका मुख कमल सदा खिला रह सकता है, कैसे उनका स्वास्थ्य सुन्दर, शरीर सुदृढ़, अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल और खूबसूरत बने रह सकते हैं। साधारण अवस्थामें रजोदर्शनके समय, गर्भावस्थामें, प्रसवके समय, बच्चा जब दूध पी रहा हो, उस समय किन नियमोंका पालन करना चाहिये, जिससे उनकी सुन्दरता, उनका मन, उनका आचार व्यवहार और सौष्ठव नष्ट न हो। ये सभी उपाय इतने सरल और सुगम बताये गये हैं, कि थोड़ा ध्यान देने पर भी स्त्रियोंका अमोघ कल्याण हो सकता है। स्त्रियोंके बड़े कामकी चीज़ है। मूल्य २)



यह वही अमूल्य ग्रन्थ है, जो सभी संसारी मनुष्योंको वह पदार्थ दिला सकता है, जो उसके जीवनका ऐसा, प्रेमका फूल और लोक परलाकको बनानेवाला है। पुस्तकको पढ़कर आप जान सकते हैं, कि आजकल

इस देशमें कुमार्गियों, दुराचारियों, निर्बलों, बुद्धिहीनों और मूर्खोंकी क्यों भरमार हो रही है। आप जान सकते हैं, कि अच्छी या बुरी, मूर्ख या विद्वान, सदाचारी या दुराचारी सन्तान उत्पन्न करना ईश्वरके हाथोंमें ही नहीं बल्कि अपने ही कर्मों पर निर्भर है। आप समझ सकेंगे, कि जिस कार्यको आजकल हम भाग्यके भरोसे छोड़ते आये हैं, वह असलमें अपने ही हाथोंका खिलौना है। वास्तवमें बात यह है, कि अपने बच्चोंको माता-पिता जैसा चाहे बना सकते हैं। जिस रङ्ग-रूप स्वभाव बुद्धिका पैदा करना चाहें, कर सकते हैं। वे चाहें तो कन्या ही कन्या और चाहें तो पुत्र ही पुत्रका जन्म दे सकते हैं। इस पुस्तकमें वे ही उपाय और युक्तियाँ बतायी हैं, जिससे माता-पिता ठीक अपनी इच्छाके मुताबिक बच्चा पैदा कर सकें। सभी युक्तियाँ बड़ी ही सरल और सहज हैं। हर शख्स इसे काममें लाकर मनचाही सन्तान, गुलाबके फूल जैसा बालक, व्यास शुकदेव तथा अन्य महात्माओं जैसा पुत्र उत्पन्न कर सकता है। खूब मोटी, अनेक पृष्ठोंकी दलदार पुस्तकका मूल्य २।

सोल एजेण्ट—पाठक एण्ड कंपनी,

७३ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

